भगवत्शरण उपाध्याय

और

उनका यात्रा साहित्य



डॉ॰ मुरारीलाल शर्मा

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय की भाषा विषयानुकूल होती है, इसीलिए एक विद्वान् ने संशयवश मुझसे पूछा था कि डॉ. उपाध्याय की अपनी भाषा का मुहावरा नहीं बन पाया था। मैं लगभग तिलमिला गया था; उसी तिलमिलाहट में मैंने उनसे पूछा था कि उन्होंने डॉ. उपाध्याय को कितना पढ़ा है ? जिन लोगों ने उनका कालिदास (उपन्यास) सवेरा, संघर्ष और गर्जन (कहानियाँ) अथवा आलोचना ग्रन्थ पढ़े हैं, उन्होंने अनुभव किया होगा कि डॉ. उपाध्याय की भाषा अत्यन्त संस्कृतनिष्ठ, किंचित् कठिन एवं पाण्डित्यपूर्ण है। दूसरी ओर उनका बाल-साहित्य, यात्रा-साहित्य और संस्मरण अपेक्षा सरल एवं मिश्रित शब्दावली से परिपूर्ण हैं।

वक्तृत्व शैली का ऐसा मार्दव किसी विरले विद्वान् को ही मिला होगा जैसा डॉ. उपाध्याय को प्राप्त था। इसी आच्छादन कर देने वाली वक्तृत्व शैली ने मुझे प्रभावित किया कि मैं उनके लेखन के एक अंश पर कुछ लिखने का साहस जुटा सका। ज़रूरत इस बात की थी (आज भी है) कि डॉ. उपाध्याय के सम्पूर्ण साहित्य का अनुशीलन होना चाहिए था किन्तु आज इस अवस्था में कहते नहीं बनता कि मैंने ऐसा क्यों किया !

[illegible]
02-03-2000

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय और
उनका यात्रा-साहित्य

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय
और
उनका यात्रा-साहित्य

डॉ. मुरारीलाल शर्मा

आकाश पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स
ई-10/663, उत्तरांचल कॉलोनी, गाजियाबाद (उ. प्र.)

प्रकाशक : आकाश पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स
ई-10/663, उत्तरांचल कालोनी,
निकट पाईप लाईन, लोनी बॉर्डर,
गाजियाबाद (उ. प्र.)
फोन : 4603892

संस्करण : 2000

मूल्य : 150 रुपये मात्र

शब्द-संयोजन : राजेश लेज़र प्रिंट्स,
शाहदरा, दिल्ली-32

मुद्रक : आर. के. ऑफसेट,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

DR. BHAGVAT SHARAN UPADHYAYA AUR
UNKA YATRA-SAHITYA

Rs. 150.00

पुरोवाक्

मैंने सन् 1971 से लिखना शुरू कर दिया था। उन्हीं दिनों मेरी रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगीं। बड़ा भला लगता था—स्वयं को इस प्रकार अभिव्यक्त होते हुए देखकर। 'सरस्वती' में 1980 में जब मेरा पहला शोध-पत्र प्रकाशित हुआ तब मुझे पहली बार अपने रचना-धर्म की सार्थकता का अनुभव हुआ। सरस्वती पत्रिका हिन्दी साहित्य की एक सुष्ठु परम्परा का प्रतीक रही है। मेरा लिखना-पढ़ना और छपना ज़ारी रहा। दूरदर्शन, आकाशवाणी और कवि-सम्मेलनों से जुड़ते ही अपने रचना-संसार को अनेक स्तरों पर जीने-भोगने का अवसर मिला। मेरा सारा रचना-कर्म ज्यों-ज्यों विस्तृत होता गया, उतना ही अव्यवस्थित भी। जल्दी-जल्दी में काव्य पुस्तक छपी—'जानें कब खिले पलाश' फिर असंतोष और भी बढ़ गया। आज भी शायद मैं असमंजस में हूँ कि मुझे क्या और किस विधा में लिखना चाहिए ? यह अवश्य तय कर पाया कि कुछ भी लिखूँ पाठक अथवा श्रोता वर्ग का ध्यान रखूँ। परिणामतः मेरी भाषा सरल होती चली गई।

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय की भाषा विषयानुकूल होती है, इसीलिए एक विद्वान् ने संशयवश मुझसे पूछा था कि डॉ. उपाध्याय की अपनी भाषा का मुहावरा नहीं बन पाया था। मैं लगभग तिलमिला गया था; उसी तिलमिलाहट में मैंने उनसे पूछा था कि उन्होंने डॉ. उपाध्याय को कितना पढ़ा है ? जिन लोगों ने उनका कालिदास (उपन्यास) सवेरा, संघर्ष और गर्जन (कहानियाँ) अथवा आलोचना ग्रन्थ पढ़े हैं, उन्होंने अनुभव किया होगा कि डॉ. उपाध्याय की भाषा अत्यन्त संस्कृतनिष्ठ, किंचित् कठिन एवं पाण्डित्यपूर्ण है। दूसरी ओर उनका बाल-साहित्य, यात्रा-साहित्य और संस्मरण अपेक्षा सरल एवं मिश्रित शब्दावली से परिपूर्ण हैं।

वक्तृत्व शैली का ऐसा मार्दव किसी विरले विद्वान् को ही मिला होगा जैसा डॉ. उपाध्याय को प्राप्त था। इसी आच्छादन कर देने वाली वक्तृत्व शैली ने मुझे प्रभावित किया कि मैं उनके लेखन के एक अंश पर कुछ लिखने का साहस जुटा सका। ज़रूरत इस बात की थी (आज भी है) कि डॉ. उपाध्याय के सम्पूर्ण साहित्य का अनुशीलन होना चाहिए था किन्तु आज इस अवस्था में कहते नहीं बनता कि मैंने ऐसा क्यों किया !

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय से मेरी प्रथम भेंट इलाहाबाद में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के स्वर्ण-जयन्ती समारोह में 1972 में हुई। केवल दो ही वक्ता छाए रहे—एक दिनकर और दूसरे डॉ. भगवतशरण उपाध्याय। बाद में वे एक बार बरेली के साहू गोपीनाथ कॉलेज के दीक्षान्त समारोह में मुख्य अतिथि होकर आए तब मैं उनसे मिला था, उन्हें सुना था और आविर्भूत हुआ था। बाद में सुना कि वे भारत के राजदूत होकर मारिशस में नियुक्त हुए हैं, फिर अचानक सन् 1982 में जाना कि उनका इस लोक का संघर्ष पूरा हो गया।

मैं दिल्ली में डॉ. उपाध्याय के परिवार से मिला उनकी दूसरी पत्नी से बातचीत की। उनके बेटे रवि के साथ शेष पूरे परिवार में मिला। बातचीत की, खाया-पिया। और देखा कि सब आश्चर्य से मुझे देख रहे थे या शायद शोध-कार्य में मेरी ईमानदारी को परख रहे थे। खुर्जा में डॉ. उपाध्याय की बहिन डॉ. पद्मा उपाध्याय तथा कलकत्ता में उनकी प्यारी बेटी श्रीमती चित्रा तिवारी से मिलना मेरे लिए एक अलग अनुभव था। वह भावनापूर्ण आवेग आज भी थमता नहीं है। डॉ. उपाध्याय के समकालीन और मित्र प्रो. के. डी. वाजपेई से जब मैं साक्षात्कार लेने तीन-चार दिनों तक लगातार गया तो प्रायः मैंने उनकी भीगी आँखों में स्मृतियों की तरलता का अनुभव किया था। प्रो. विष्णु दत्त 'राकेश' उपाध्याय जी का नाम सुनते ही विह्वल हो गए थे। प्रो. वाजपेई और प्रो. राकेश ने मुझे बड़ी महत्त्वपूर्ण सामग्री और पत्रादि भी दिए थे।

मेरे सम्पूर्ण कार्य में गुरुदेव डॉ. रामस्वरूप आर्य का मार्गदर्शन और गुरुवर्य डॉ. भगवानशरण भारद्वाज की प्रेरणा सदा साथ रही है।

मेरे परिवार ने अपने हिस्से का अर्थ और समय इस शोध के लिए दिया है। अब यौवन की दहलीज़ पर खड़े मेरे बेटा-बेटी की शिकायत है—''पापा, आपकी पढ़ाई-लिखाई ने हमें बहुत उपेक्षित किया। हम बचपन में आपका प्यार तलाशते रहे और अब आपने हमें हमारी पढ़ाई-लिखाई के लिए घर से बाहर कर दिया।''

मेरे सहयोगी प्रिय अरविन्द कुमार ने प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों ही रूपों में मुझे बहुत सहयोग दिया है। आकाश पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स के व्यवस्थापक श्री फतेह चन्द के मन में यह पुस्तक छापने का शुभ-संकल्प जागृत हुआ, संयोग ही कहा जाएगा।

इस पुस्तक के माध्यम से मैं किसी प्रकार का दावा नहीं करता हूँ, केवल अपने विनम्र प्रयास को सामने ला रहा हूँ।

—मुरारीलाल शर्मा

दो शब्द

डॉ॰ भगवतशरण उपाध्याय अप्रतिम विद्वान थे। संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी तीनों भाषाओं में उनकी प्रतिहत गति थी। इनके अतिरिक्त भारतीय भाषाओं में बंगला, गुजराती, मराठी तथा विदेशी भाषाओं में फ्रेंच, इजिप्सियन, असीरियन पर भी उनका पूर्ण अधिकार था। डॉ॰ उपाध्याय ने शताधिक ग्रंथों की रचना की है, जिनमें शोध-ग्रंथ, निबंध, उपन्यास, कहानी, नाटक, समीक्षा, पुरातत्व, इतिहास, यात्रा-विवरण तथा रिपोर्ताज आदि सम्मिलित हैं। अपनी कृतियों द्वारा उन्होंने हिन्दी के भंडार को तो भरा ही अंग्रेजी में भी इंडिया इन कालिदास, वीमेन इन ऋग्वेद, फीडर्स ऑफ इंडियन कल्चर, एंशेष्ट वर्ल्ड, शेड्स एंड शैडोज जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की।

डॉ॰ भगवतशरण उपाध्याय द्वारा रचित ग्रंथों में शोध, समीक्षा, इतिहास, पुरातत्व तथा कथा-साहित्य का जहां अपना महत्त्व है वहां उनका यात्रा-साहित्य अद्वितीय है डॉ॰ मुरारीलाल शर्मा ने अपने शोध-प्रबंध 'डॉ॰ भगवतशरण उपाध्याय और उनका यात्रा-साहित्य' में डॉ॰ भगवतशरण उपाध्याय के प्रामाणिक जीवनवृत्त के साथ-साथ उनके यात्रा-साहित्य पर सविस्तार प्रकाश डाला है।

शोध-प्रबंध के प्रथम अध्याय में डॉ॰ भगवतशरण उपाध्याय का जीवनवृत्त प्रस्तुत करते हुए लेखक ने जहां प्रकाशित ग्रंथों तथा निबंधों से सहायता ली है वहीं डॉ॰ उपाध्याय की पत्नी श्रीमती देवकी उपाध्याय, अनुजा पद्मा उपाध्याय तथा प्रो॰ कृष्णदत्त वाजपेयी से साक्षात्कार कर तथा पत्रों द्वारा विरल जानकारी प्राप्त करके उसे प्रामाणिक बनाने का सराहनीय प्रयास किया है। इससे डॉ॰ उपाध्याय के जीवन के अनेक अछूते पक्षों का उद्‌घाटन हुआ है।

डॉ॰ भगवतशरण उपाध्याय ने जिस विपुल साहित्य की रचना की है उसमें यात्रा-साहित्य का विशिष्ट स्थान है। यात्रा-साहित्य विषयक उनकी आठ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं—विश्व-यात्री वो दुनिया, लाल चीन, कलकत्ता से पीकिंग, सागर की लहरों पर, मैंने देखा, घूमने का राज तथा गंगा गोदावरी। प्रस्तुत शोध-प्रबंध के पांच अध्यायों में क्रमशः डॉ॰ भगवतशरण उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में वस्तु-वर्णन; पुरातात्विक ऐतिहासिक एवं भौगोलिक परिवेश सभ्यता और संस्कृति, यात्रा-साहित्य में लेखक का व्यक्तित्व तथा शिल्प का विशद विवेचन किया गया है। अंतिम अध्याय में समग्र अध्ययन का मूल्यांकन है।

शोधकर्ता के अनुसार डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में प्रकृति-चित्रण, नगर एवं ग्राम-वर्णन तथा चरित्रांकन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि वह यथार्थ से अनुबंधित है लेकिन उनके वर्णन-कौशल के कारण उसमें साहित्यिकता का समावेश हो गया है। उनका प्रकृति-चित्रण उनकी अपनी शैली में अनुपम एवं अद्‌भुत है। डॉ. उपाध्याय पुरातत्व तथा इतिहास के अद्वितीय विद्वान थे। अतः उनके यात्रा-साहित्य में पुरातात्विक तथा ऐतिहासिक परिवेश मुखर हुआ है। लेखक के शब्दों में "वस्तुतः अतीत उनके यात्रा-साहित्य में बहुधा प्राण-तत्त्व के रूप में उपस्थित है।" मार्क्सवाद से प्रभावित होने के कारण डॉ. उपाध्याय वर्ग-भेद तथा शोषण के घोर विरोधी थे। उन्हें सच्चे अर्थों में मानवतावादी माना जा सकता है। उनके यात्रा-साहित्य में पग-पग पर इसकी झलक मिलती है।

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में विभिन्न देशों की सभ्यता और संस्कृति के विविध रूपों के दर्शन होते हैं। डॉ. उपाध्याय ने भारत के विभिन्न क्षेत्रों के साथ विश्व के अनेक देशों चीन, रूस, फ्रांस, मिस्र, यूनान, तुर्की, युगोस्लाविया, आस्ट्रेलिया, मारिशस आदि की यात्राएं की थीं। इन देशों की संस्कृति का आलोड़न-विलोड़न करने के पश्चात् वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि भारत और एशिया के अन्य देशों की अपेक्षा पश्चिम के समाज और संस्कृति में पर्याप्त मित्रता है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध में डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य के शिल्प पर प्रथम बार प्रकाश डाला गया है। इसके अन्तर्गत डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य की भाषा-शैली का सोदाहरण सूक्ष्म विवेचन किया गया है।

शोधकर्त्ता ने 'प्रबंध' के लेखन में पर्याप्त परिश्रम किया है। इसमें जहां प्रकाशित ग्रंथों से सहायता ली गई है वहां डॉ. उपाध्याय के सम्पर्क में आने वाले तथा विशिष्ट विद्वानों से पत्र-व्यवहार करके महत्त्वपूर्ण सामग्री जुटाई गई है। इन विद्वानों में प्रो. कृष्णदत्त वाजेपयी, प्रो. कमला रत्नम्, श्री अरविन्द गुर्टू, प्रो. कमलानाथ शास्त्री, श्री गोपालप्रसाद व्यास आदि उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, लोक शिक्षक तथा नवभारत टाइम्स में डॉ. उपाध्याय विषयक प्रकाशित लेखों से भी पूर्ण लाभ उठाया है यह शोधकर्त्ता की जागरूकता का प्रमाण है।

मुझे विश्वास है कि प्रस्तुत शोध-प्रबंध अपनी मौलिकता एवं गुणवत्ता के कारण विद्वानों में समादृत होगा।

–डॉ. रामस्वरूप आर्य

दिनांक : 5 जुलाई, 2000 ई.

बी-14, नई बस्ती, बिजनौर

शोध-निर्देशक

अनुक्रम

1

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय का जीवन-वृत्त एवं कृतित्व-परिचय

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय भारतीय संस्कृति, इतिहास एवं पुरातत्त्व के गम्भीर अध्येता और प्रामाणिक लेखक थे। उनके अध्ययन एवं लेखन का क्षेत्र इतना विस्तृत था कि महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के अतिरिक्त अन्य किसी लेखक को उनकी श्रेणी के लेखकों में नहीं गिना जा सकता। राहुल जी के पास ज्ञान का विस्तार था लेकिन डॉ. उपाध्याय के पास शैली की विलक्षणता एवं भाषा का लालित्य भी था।

भारत-विद्या पर डॉ. उपाध्याय का वैसा ही अधिकार था जैसा कि पश्चिमी साहित्य पर वर्टेण्ड रसेल का।

डॉ. उपाध्याय वेश-भूषा में नितान्त अंग्रेज थे—बढ़िया सूट, टाई, चमकीले बूट, बड़े सुन्दर बाल, सुन्दर चश्मा, मुँह में पान यही डॉ. उपाध्याय की बाहरी पहचान थी। साम्यवादी दर्शन से प्रभावित एवं मानववादी चिन्तन से प्रतिबद्ध लेखक डॉ. उपाध्याय भारतीय संस्कृति के मनीषी व्याख्याकार थे। ईश्वर के अस्तित्व को नकारते हुए डॉ. उपाध्याय ने मानव-शक्ति को आदर दिया। उनकी दृष्टि में मज़दूर और सर्वहारा समाज के वास्तविक निर्माता हैं। हिन्दी-साहित्य के लेखकों, पुरातत्त्वविदों, इतिहासकारों एवं कोशकारों में डॉ. उपाध्याय का नाम अप्रतिम है।

जन्म

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय का जन्म 7 अगस्त, सन् 1908 ई. को अपनी ननिहाल (ग्राम—दुविहानवादा, तहसील—मुहमदावाद, जिला—ग़ाज़ीपुर, उत्तर प्रदेश) में हुआ था। डॉ. उपाध्याय के जन्मकाल के विषय में डॉ. सुरेन्द्र माथुर लिखते हैं—"इनके जन्मकाल की सही तिथि माता-पिता को भी ज्ञात नहीं थी, अतः इन्होंने स्वयं ही अपना जन्म-काल 3 जून, सन् 1910 निर्मित कर दिया।[1] अपने इकलौते लाड़ले पुत्र की जन्म-तिथि माता-पिता को न याद हो, ऐसा एकदम विश्वसनीय

नहीं। डॉ. पद्मा उपाध्याय (डॉ. भगवतशरण उपाध्याय की अनुजा, पूर्व प्राचार्या, आर्य कन्या डिग्री कॉलेज, खुरजा, उत्तर प्रदेश) ने मुझे बताया कि उनकी वास्तविक जन्म-तिथि 7 अगस्त, 1908 ही थी और वे 8 अगस्त, 1982 को पूरे 74 वर्ष की अवस्था में दिवंगत हुए थे। वह भी एक संयोग की ही बात है।[2] इनके पिता पं. रघुनन्दन उपाध्याय अपने पिता की इकलौती सन्तान थे, जो अपने तेरह बहिन-भाइयों में से अकेले जीवित बचे थे। भगवतशरण के जन्म से पूर्व इनका एक भाई तीन महीने की अवस्था में दिवंगत हो गया था, इसलिए घर के लोगों का यह विश्वास दृढ़ हो गया था कि पिता श्री रघुनन्दन उपाध्याय के पैतृक घर उजियार, जिला–बलिया, उत्तर प्रदेश में जन्मा बच्चा जीवित नहीं रह सकता, इसलिए उपाध्याय जी की माता श्रीमती महादेवी उपाध्याय को दूसरे बालक (भगवतशरण) को जन्म देने के लिए उनके मायके दुबिहानवादा भेज दिया गया और वहीं 7 अगस्त, 1908 के दिन देश के इस उद्भट विद्वान्, प्रखर वाग्मी, विश्वविख्यात इतिहासकार भगवतशरण उपाध्याय का जन्म हुआ।

साढ़े चार वर्ष की अवस्था में भगवतशरण अपने पिता के घर उजियार, जिला बलिया, उत्तर प्रदेश लाए गए।

माता-पिता

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय की माता श्रीमती महादेवी उपाध्याय सीधी-सादी ग्रामीण महिला थीं। पतिपरायणा होने के साथ-साथ उन्हें अपने इकलौते पुत्र भगवतशरण पर विशेष अनुराग ही नहीं, मोह भी था, जो सर्वथा स्वाभाविक था। माता महादेवी पुत्र की सारी अभिलाषाओं को पूरा करती थीं। साथ ही कभी-कभी पति को भी पुत्र की हर इच्छा पूरी करने के लिए बाध्य करती थीं।

भगवतशरण के पिता पं. रघुनन्दन उपाध्याय वैदिक संस्कृति तथा दर्शन के प्रसिद्ध विद्वान् थे। संस्कृत एवं फारसी दोनों ही भाषाओं पर पं. रघुनन्दन उपाध्याय का समान अधिकार था। उनके पाण्डित्य का प्रभाव बालक भगवतशरण के मन-मस्तिष्क पर भी पड़ा था।

पं. रघुनन्दन उपाध्याय इलाहाबाद हाईकोर्ट के प्रसिद्ध एडवोकेट रहे, बाद में उन्होंने सुप्रीम कोर्ट की भी वकालत की। पिता का देश-प्रेम तथा साहित्य-प्रेम दोनों ही बालक भगवतशरण के व्यक्तित्व-निर्माण में सहयोगी हुए। भगवतशरण अपने पिता का बहुत आदर करते थे और जब उन्हें लिखते-पढ़ते समय संस्कृत तथा विशेषकर फारसी में कोई शंका होती, तो अपने पिताश्री से ही उसका समाधान कराते थे।

भगवतशरण अपने पिता को 'बाबूजी' सम्बोधन से पुकारते थे। पिता-पुत्र में मर्यादा होते हुए भी सम्बन्ध बहुत अच्छे रहे, साथ ही विभिन्न विषयों की चर्चा करते

समय दोनों खुलकर बातचीत करते हुए भी पाए जाते थे। अपनी चीन यात्रा में अपने पिता को पत्र में डॉ. भगवतशरण ने लिखा है–

''बाबूजी,

...मुझे मालूम है कि आप हवाई-यात्रा से कितना घबराते हैं और जानता हूँ कि किस परेशानी से आप मेरे पत्र की राह देख रहे होंगे।''[3]

इस पत्र से पिता-पुत्र के सम्बन्धों की एक झलक मिल जाती है।

भगवतशरण को जहाँ माँ के दुलार ने आधुनिक शौकीन एवं स्वाभिमानी बनाया था, वहीं उन्हें पिता की ज्ञान-साधना और राष्ट्रीयता विरासत में मिली थी।

प्रारम्भिक शिक्षा एवं असहयोग आन्दोलन

भगवतशरण की प्रारम्भिक शिक्षा गाँव–उजियार (बलिया) में ही सम्पन्न हुई थी। प्रारम्भ से ही विद्यालय की शिक्षा के अतिरिक्त वे घर पर ही संस्कृत-साहित्य का अध्ययन करने लगे। उच्च-शिक्षा के लिए भगवतशरण इलाहाबाद आ गए; लेकिन शिक्षा चल नहीं पाई, क्योंकि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का देशव्यापी आन्दोलन चल रहा था और संवेदनशील बालक भगवतशरण पढ़ाई छोड़कर सन् 1922 में असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित हो गए। तत्कालीन अंग्रेज सरकार के कानूनों का विरोध करने के कारण भगवतशरण को डेढ़ वर्ष का कारावास भोगना पड़ा। उन्होंने दो बार जेल यात्राएँ कीं।[4] अंग्रेजों ने बालक भगवतशरण को दण्डस्वरूप उल्टा लटका दिया था। इकलौते पुत्र की इस कठोर यातना को देख-सुनकर पिता पं. रघुनन्दन उपाध्याय का हृदय विचलित न हो जाय और कहीं पिता मोहाविष्ट होकर अंग्रेज सरकार से माफीनामा न भर दें, इसलिए भगवतशरण ने पिता को सन्देश भिजवाया था कि कुछ भी हो जाय पिताजी उनसे (भगवतशरण से) अंग्रेज सरकार से माफी माँगने को न कहें। उस आन्दोलन में जेल यात्रियों में सबसे कम उम्र के भगवतशरण ही थे।[5]

अध्ययन तथा शोध-कार्य

जेल से छूटने के बाद भगवतशरण ने काशी में संस्कृत का गहन अध्ययन किया। डॉ. भगवतशरण उपाध्याय ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'कालिदास' में कालिदास की अध्ययन-स्थली काशी को बड़ी भाव-विह्वलता के साथ स्मरण किया है–''काशी में उन्होंने व्याकरण निरुक्त पढ़े, ब्राह्मण-उपनिषद् साधे, दर्शन गुने, काव्य, छन्द-शास्त्र, नाट्य-शास्त्र, अर्थशास्त्र, अन्वीक्षिकी पढ़ी। रामायण, महाभारत, पुराण उनके मानस-पटल पर उतरे। कलाएँ, काम-सूत्र, जिह्वाग्र पर विराजे। संगीत का उन्होंने अभ्यास किया। कवि कर्म मुखर हुआ। भारती अविरल बह चली।''[6]

यह वर्णन कालिदास के वास्तविक जीवन से कितना जुड़ा है, कहना कठिन

है, पर लेखक का अपना अध्ययन काशी में ऐसे ही वड़े फलक पर सम्पन्न हुआ, यह निश्चित है। वे 'सवेरा, संघर्ष और गर्जन' ये तीन कथा-कृतियाँ रचने से काफी पूर्व भारतीय कला शिल्प और पुरातत्त्व के अध्ययन में प्रवृत्त हो गए थे। यहीं डॉ. उपाध्याय ने अंग्रेजी में महत्त्वपूर्ण शोध-ग्रन्थ 'वीमेन इन ऋग्वेद' तैयार किया। इसी ग्रन्थ पर उन्हें विद्या वारिधि (पी-एच. डी.) की उपाधि प्राप्त हुई।[8] भगवतशरण की उच्च शिक्षा, काशी, इलाहाबाद और लखनऊ विश्वविद्यालय में ही सम्पन्न हुई। उन्होंने एम. ए. तथा पी-एच. डी. डिग्री इतिहास एवं पुरातत्त्व विषय में लखनऊ विश्वविद्यालय से प्राप्त की। इतिहास में उनका शोध-कार्य था—'इण्डिया इन कालिदास'।[8] प्रो. विजयेन्द्र स्नातक लिखते हैं—"डॉ. उपाध्याय की अनुसन्धान में गहरी रुचि थी। विशेषतः इण्डोलॉजी—भारतीय विद्या के अछूते सन्दर्भ की खोजबीन करने में उनका मन बहुत रमता था।"[9] प्रो. स्नातक ने उनके अनुसन्धानपरक सात ग्रन्थों की परिगणना विशेष रूप से की है—अंग्रेजी में—'वीमने इन ऋग्वेद', 'इण्डिया इन कालिदास' और 'द एंशेण्ट वर्ल्ड' तथा हिन्दी में—'विश्व साहित्य की रूपरेखा', 'इतिहास साक्षी है', 'सांस्कृतिक निबन्ध' तथा 'प्राचीन भारत का इतिहास'।[10]

प्रो. के. डी. वाजपेयी का कहना है कि डॉ. उपाध्याय को विदेशों में अनेक बार 'डाक्टरेट' की उपाधि से विभूषित किया गया था, ऐसा वे बताया करते थे।[11]

डॉ. उपाध्याय द्वारा लिखे गए प्रोफेसर विष्णुदत्त राकेश के नाम एक पत्र से ज्ञात होता है कि डॉ. भगवतशरण उपाध्याय 'इण्डिया इन कालिदास' के ही सहयोगी संस्करण के रूप में 'कालिदास : दि मेन एण्ड हिज़ वर्क' पुस्तक तैयार कर रहे थे।[12]

डॉ. उपाध्याय हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, फ्रेंच, इजिप्सियन, असीरियन, बँगला, मराठी, गुजराती को पूर्ण अधिकर से लिखते-पढ़ते और बोलते थे।[13] प्रो. विजयेन्द्र स्नातक ने उचित ही लिखा है—"डॉ. उपाध्याय के लेखन और अध्ययन की परिधि बहुत व्यापक थी। वे जीवन भर विद्यार्थी अनुसन्धानकर्ता और साहित्याकर बने रहे।"[14]

डॉ. उपाध्याय का अध्ययन अत्यन्त विस्तृत था। ऋग्वेद से लेकर उर्वशी तक सम्पूर्ण भारतीय साहित्य तथा कलाएँ, विश्वसाहित्य, पुरातत्त्व एवं इतिहासवेत्ता, गहन अध्येता, वैज्ञानिक शोधकर्ता और प्रामाणिक लेखक दूसरा कोई नहीं है।

परिवेश

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के लेखकीय जीवन में उनके परिवेश का भी बहुत बड़ा योगदान रहा है। उनके अपने घर का वातावरण पिता का पाण्डित्य, फिर काशी का वैदिक वातावरण उन्हें प्राचीन साहित्य संस्कृति से जोड़ने के लिए कारण बना। महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन में भाग लेकर डॉ. उपाध्याय के राष्ट्रीय संस्कारों को दृढ़ता प्राप्त हुई। लखनऊ विश्वविद्यालय में प्राचीन इतिहास और

संस्कृति पर शोध के लिए उपयुक्त वातावरण डॉ. उपाध्याय को प्राप्त हुआ। प्रो. राधाकुमुद मुकर्जी डॉ. मोतीचन्द्र, राय कृष्णदास एवं राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त तथा डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के सम्पर्क में उनकी मेधा को और अधिक निखार पाने का अवसर मिला। काशी, इलाहाबाद और लखनऊ विश्वविद्यालयों में डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के लेखन की पूर्व पीठिका तैयार हो गई थी। पटना में सन् 1935 से 37 तक डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल के साथ शोध-कार्य और डॉ. स्टेला क्रामिश के साथ पटना म्यूजियम की मूर्तियों की सूची बनाते समय डॉ. उपाध्याय में पुरातत्त्व के प्रति गहरी अभिरुचि पैदा हुई थी। सन् 1937 से 39 तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की शोध-पत्रिका के सम्पादक के रूप में डॉ. उपाध्याय अपने समकालीन विद्वानों से प्रभावित ही नहीं हुए अपितु अपनी मेधा के सहारे विद्वत्समाज में अतीव सम्मानित होने लगे थे। प्रो. यू. सी. नाग का उन पर अमित स्नेह था।[15] उत्तर प्रदेश के लखनऊ संग्रहालय के क्यूरेटर के रूप में वे 1940 से 43 तक प्रशंसनीय कार्य करते रहे।

बिड़ला कॉलेज, पिलानी (राजस्थान) में इतिहास-विभाग के प्राध्यापक के रूप में डॉ. उपाध्याय ने एक नए परिवेश से जुड़कर नये सिरे से लेखन-कार्य किया, लेकिन बिड़ला कॉलेज, पिलानी का परिवेश भी डॉ. उपाध्याय को रास नहीं आया। यद्यपि वहाँ उन्हें अपनी दूसरी पत्नी विदुपी महिला और बिड़ला कॉलेज, पिलानी की तत्कालीन प्राचार्या का स्नेह-सम्बल मिला था, फिर भी उनके सम्बन्ध प्रायः प्रबन्धकों से विगड़ते चले गए और उन्होंने वहाँ की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। डॉ. उपाध्याय ने स्वयं लिखा है—"शादी और पिलानी के झगड़े, इन्सानियत और पैसे के परस्पर झगड़े जो एक ओर ईमान और इज्जत के थे, दूसरी ओर ऐंठ के। फिर इस्तीफा और प्रस्थान।"[16]

बिड़ला कॉलेज में रहते हुए ही डॉ. उपाध्याय ने प्रो. के. डी. वाजपेई (सागर) के साथ मिलकर एक बहुत बड़ा कार्य किया था—'इंडियन हिस्ट्री, के हिन्दी अनुवाद का। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने डॉ. उपाध्याय के नाम अपने पत्र में लिखा था कि इस अनुवाद कार्य में हिन्दी अच्छी, सरल एवं शुद्ध होनी चाहिए, साथ ही उसका साहित्यिक महत्त्व नष्ट न होने पाए...।[17]

यह पत्र जहाँ डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के हिन्दी भाषा सम्बन्धी विचारों को स्पष्ट करता है वहीं डॉ. उपाध्याव के सम्पर्कों, उनकी बड़ी-बड़ी योजनाओं और उनके परिवेश के सम्बन्ध में नयी सूचनाएँ प्रदान करता है।

बिड़ला कॉलेज, पिलानी छोड़ने के वाद डॉ. उपाध्याय विश्व-परिवार के सदस्य बन गए। अनवरत यात्राएँ और अथक लेखन-अध्ययन उनकी जीवनचर्या बन गईं। उनका परिवेश भारत की सीमाएँ लाँघकर सारा विश्व बना।

पीकिंग के निरस्त्रीकरण सम्मेलन 1952 में डॉ. उपाध्याय भारत के प्रतिनिधि

बनकर सम्मिलित हुए। एशिया और यूरोप की राजनीति और भारत की विदेश नीतियों की स्पष्ट व्याख्या करते हुए डॉ. उपाध्याय एशियाई शान्ति सम्मेलन परिवेश से जुड़े।

काशी, इलाहाबाद, लखनऊ, पिलानी, हैदराबाद, उज्जैन देहरादून, दिल्ली और मॉरिशस की राजधानी पोर्ट लुई वे नगर हैं जहाँ डॉ. उपाध्याय ने अपना जीवन जिया, साधना की और जहाँ के परिवेश से वे प्रभावित हुए तथा उसे प्रभावित भी किया। परन्तु उज्जैन का उनके ऊपर बड़ा गहरा प्रभाव था, एक तो कालिदास की नगरी होने के कारण दूसरे पं. सूर्यनारायण व्यास के स्नेह-सिंचित सान्निध्य एवं कविवर डॉ. शिवमंगलसिंह 'सुमन' की प्रगाढ़ मैत्री के कारण। डॉ. सुमन से डॉ. उपाध्याय की मित्रता के बारे में प्रो. कमल रत्नम् लिखती हैं–"दोनों (डॉ. उपाध्याय और डॉ. सुमन) अपने-अपने क्षेत्र में अद्वितीय। एक में पाण्डित्य का पर्वत तो दूसरे में हृदय का लहलहाता सागर। दोनों एक-दूसरे के पूरक, दोनों के श्रोता मन्त्र-मुग्ध।"[18]

पं. सूर्यनारायण व्यास से डॉ. उपाध्याय का कालिदास के जन्म संवत् एवं जन्म-स्थान के बारे में मत-वैभिन्न्य था। डॉ. उपाध्याय के क्रोधी स्वभाव से भी अविचलित रहने वाले व्यास जी कहा करते थे–"क्या हुआ, यदि डॉ. उपाध्याय कभी-कभी क्रोध कर बैठते हैं। उनकी विद्वत्ता और अपने विषय के समर्पण में तो कोई कमी नहीं है।"[19] डॉ. शिव शर्मा भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि महाकवि कालिदास के प्रति उनके आकर्षण ने भी उन्हें उज्जैन में रहने के लिए प्रेरित किया।[20]

देहरादून में रहते हुए डॉ. उपाध्याय ने अंग्रेजी और हिन्दी में डटकर लेखन किया। श्री पद्म कुमार जैन और कैप्टेन शूरवीर सिंह उनके घनिष्ठ मित्र थे, जिनका सहयोग उन्हें देहरादून-प्रवास में मिला। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में डॉ. उपाध्याय की वास्तविक छवि इसी अवधि में उभरकर आई। श्री पद्मकुमार जैन का शोध-पुस्तकालय 'ज्ञान लोक' डॉ. उपाध्याय के विस्तृत अध्ययन के लिए उचित माध्यम बना था लेकिन पर्वतीय प्रदेश की जलवायु उनकी साँस की बीमारी के लिए रास नहीं आई, इसलिए उन्हें उज्जैन वापिस जाना पड़ा। देहरादून-प्रवास में डॉ. उपाध्याय के नाम डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का एक पत्र उनके मधुर सम्बन्धों का परिचायक है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने डॉ. उपाध्याय को लिखा था–

"आदरणीय उपाध्याय जी,

...आप बहुत काम करते हैं, और अपने शरीर की बिल्कुल परवाह नहीं करते, यह मेरी बहुत दिनों से शिकायत है। आपने जो कुछ साहित्य और इतिहास को दिया है, वह सदा स्मरण किया जाएगा। अब थोड़ा विश्राम का समय आ गया है। ..लम्बी यात्राएँ बन्द रखें और निश्चिन्त होकर कुछ दिन विश्राम करें।"[21]

प्रभाकर द्विवेदी जी ने भी स्वीकार किया है–"वे (डॉ. उपाध्याय) मेरे पिता (डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी) के मित्र थे। यही सम्बन्ध मुझे उनके निकट लाया।"[22]

डॉ. उपाध्याय के मित्रों और सम्बन्धियों की सूची बहुत लम्बी है किन्तु उनमें से प्रमुख थे—डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, सुमित्रा नन्दन पंत, नरेश मेहता, कमलापति मिश्र, डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन', प्रो. कमलारत्नम्, प्रो. के. डी. वाजपेई, इन्द्रनारायण गुर्टू, आचार्य नरेन्द्र देव, डॉ. राधाकृष्णन्, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, डॉ. राधाकुमुद मुकर्जी, डॉ. राममनोहर लोहिया, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, प्रो. यू. सी. नाग, महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, लाला अमरनाथ तथा सीताराम सेकसरिया आदि।

सम्पूर्ण भारत तथा एशिया और सम्पूर्ण विश्व उनके परिवेश में गिने जाने चाहिए, जिससे उनका बहुआयामी व्यक्तित्व बना और जिसे उनके प्रभावी व्यक्तित्व तथा लेखन ने प्रभावित किया।

वैवाहिक जीवन

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय का प्रथम विवाह सन् 1933 में हुआ था। इनती पत्नी श्रीमती विनोदिनी उपाध्याय क्षयरोग से पीड़ित थी। पटना और राँची के क्षयरोग चिकित्सालयों में उनकी निरन्तर चिकित्सा और सेवा डॉ. उपाध्याय की चर्या बन गई थी। श्रीमती विनोदिनी उपाध्याय से तीन सन्तानें हुई—श्री ऋषिकेश उपाध्याय, श्री ओंकारनाथ उपाध्याय और श्रीमती चित्रा तिवारी।

क्षयरोग के कारण श्रीमती विनोदिनी उपाध्याय की 26 जनवरी 1944 को मृत्यु हो गई। डॉ. उपाध्याय के जीवन में यह सबसे बड़ा आघात था। विरही यक्ष का चरित्र मानो डॉ. उपाध्याय पर ही चरितार्थ होने लगा था। यद्यपि संघर्षशील और कर्मनिष्ठ डॉ. उपाध्याय विरही बनकर भी लिखते रहे, पर उन्होंने अपने पत्नी-प्रेम का परिचय अपनी वर्षों की साधना से लिखी कृति 'इण्डिया इन कालिदास' अपनी स्वर्गीया पत्नी श्रीमती विनोदिनी उपाध्याय को समर्पित कर दिया। प्रथम पत्नी के प्रति उपाध्याय जी के अनुराग की चर्चा करते हुए प्रो. कमलारत्नम् लिखती हैं—

"इस पत्नी से अपने पुत्र ओंकारनाथ और उसके परिवार को वे अक्सर अपने पास रखते और स्वर्गीया सहचरी को याद करते रहते थे। सीधी-सादी वेशभूषा में पत्नी का फोटो सदा उनके शयन-कक्ष में लगा रहा।"[23]

बिड़ला कॉलेज, पिलानी के प्राध्यापन-काल में केरल के उच्च ब्राह्मण कुल की कन्या देवकी अम्मा से डॉ. उपाध्याय का परिचय हुआ देवकी अम्मा उस समय उसी कॉलेज की प्राचार्या थीं। उन्हें भारत के बालकों के कॉलेज की प्रथम महिला प्राचार्य होने का गौरव प्राप्त है। मद्रास विश्वविद्यालय से चार स्वर्ण-पदक जीतने वाली मेधावी कन्या का आकर्षण डॉ. उपाध्याय को फिर गार्हस्थ्य की ओर खींच लाया और वे देवकी अम्मा के साथ 26 मई सन् 1946 को दाम्पत्य-सूत्र में बंध गए। उनका दूसरा विवाह केरलीय रीति से देवकी अम्मा के मूल निवास तेल्लिचेरी (केरल) में हुआ था; लेकिन कालिदास के प्रखरतम अध्येयता यक्ष रूप इस विद्वान्

के भाग्य में गार्हस्थ्य का वैसा सुख नहीं लिखा था, जैसा और लोग भोग लेते हैं। व्यक्तिगत कारणों से और अपने स्वाभिमानी स्वभाव के कारण डॉ. उपाध्याय को पिलानी की नौकरी छोड़ देनी पड़ी उसके बाद वे प्रायः श्रीमती देवकी उपाध्याय से अलग ही रहे। अनेक बार डॉ. उपाध्याय हँसी-हँसी में कहा भी करते थे, ''मेरी पत्नी ने मुझे नौकरी से निकाल दिया''।[24] श्रीमती देवकी उपाध्याय इस समय ग्रेटर कैलाश, नयी दिल्ली में अपने भव्य भवन में बीते वसन्तों का अतीत याद कर रही हैं। उनके एकमात्र पुत्र रवि उपाध्याय दो सुन्दर सुकुमारों (प्रशान्त और निशान्त) के पिता और अपने परिवार के साथ सुखी जीवन जी रहे हैं।

डॉ. उपाध्याय का अपना वैवाहिक जीवन बहुत सुखद नहीं कहा जा सकता, लेकिन उनकी सन्तति सुखी-सम्पन्न है, यह देखकर स्वर्ग में भी उन्हें सुख होता होगा।

व्यावसायिक जीवन

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के व्यावसायिक जीवन का प्रारम्भ वस्तुतः लेखन, सम्पादन से ही हुआ। प्रारम्भ में सन् 1937 से 1939 तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की शोध-पत्रिका के सम्पादक रहे। प्रो. विजयेन्द्र स्नातक लिखते हैं–''पण्डित मदनमोहन मालववीय तथा डॉ. राधाकृष्णन, डॉ. उपाध्याय की शोध-रुचि से परिचित थे, अतः उन्हें काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की शोध-पत्रिका का सम्पादक बनाया गया। इस शोध-पत्रिका को उनके सम्पादक-काल में जो यश और सम्मान प्राप्त हुआ, वह न तो उससे पहले कभी मिला था और न उसके बाद ही मिला। विदेशों में भी इस शोध-पत्रिका के लेख उन दिनों बड़े चाव से पढ़े और सराहें जाते थे। 'इण्डोलाजी' से प्रेम रखने वाले विदेशी विद्वान् भी इस पत्रिका में लेख भेजते थे।''[25] इससे पूर्व उन्होंने डॉ. काशीप्रसाद जायवाल और डॉ. स्टेला क्रामिश के साथ पटना म्यूजियम में 1935 से 37 तक महत्त्वपूर्ण शोध-कार्य किया। तत्पश्चात् उत्तर प्रदेश में प्रयाग और लखनऊ संग्रहालय के अध्यक्ष के रूप में डॉ. उपाध्याय ने सन् 1940 से 43 तक महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उनका अध्यापकीय जीवन बिड़ला कॉलेज, पिलानी में प्रारम्भ हुआ। सन् 1943 से 46 तक वे वहाँ रहे और उसके बाद कुछ वैचारिक मतभेद के कारण वहाँ की नौकरी छोड़ दी। सन् 1946 से 1953 तक डॉ. उपाध्याय ने स्वतन्त्र लेखन किया। विदेशों में प्रायः विश्वभर में भ्रमण किया और विदेशी संस्थाओं तथा विश्वविद्यालयों के निमन्त्रण पर वहाँ पुरातत्त्व, इतिहास, कला, साहित्य और धर्म-दर्शन आदि पर भाषण करते रहे। सन् 1952 में डॉ. उपाध्याय को पीकिंग के निरस्त्रीकरण और विश्वशान्ति सम्मेलन में भाग लेने के लिए भारतीय शिष्ट-मण्डल की ओर से भेजा गया।

सन् 1953 में डॉ. उपाध्याय ने हैदराबाद में इंस्टीट्यूट ऑव एशियन स्टडीज़ की स्थापना की और वहीं 1956 तक निदेशक रहे। सन् 1957 में उन्हें नगारी

प्रचारिणी सभा, काशी के तत्त्वावधान में प्रकाशित होने वाले 'हिन्दी विश्वकोश' के मानविकी-विभाग के सम्पादक के रूप में नियुक्त किया गया। वे 1964 तक ही इस ज्ञान-यज्ञ में सहयोग दे सके और उन्होंने 'हिन्दी विश्वकोश' के प्रथम चार भागों का ही सम्पादन किया। उसके बाद फिर विदेश यात्राओं का क्रम शुरू हो गया। व्यवसाय की दृष्टि से सन् 1969 से 1973 तक वे स्थायी रूप से विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन में प्राचीन भारतीय इतिहास-संस्कृति और पुरातत्त्व विभाग के प्रोफेसर तथा अध्यक्ष के रूप में कार्य करते रहे।

26 मई, 1981 को डॉ. भगवतशरण उपाध्याय ने मॉरिशस में भारतीय राजदूत के रूप में कार्य-भार ग्रहण किया और 8 अगस्त, 1982 को इसी महत्त्वपूर्ण पद पर कार्य करते हुए उनका शरीर पंचतत्त्व को प्राप्त हो गया।

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय अत्यन्त स्वाभिमानी प्रवृत्ति के व्यक्ति थे, इसलिए वे किसी एक स्थान पर स्थायी रूप से नौकरी नहीं कर सके। अरविछ गुर्टू लिखते हैं—"डॉ. उपाध्याय का पूरा जीवन अत्यन्त संघर्ष में गुज़रा। लगभग दो दशक तक वे अपनी किताबों के बल पर जीते रहे। किसी की नौकरी में उनका मन अधिक देर नहीं रमा।"[26] डॉ. कल्पनाथ शास्त्री भी इसी बात की पुष्टि करते हुए लिखते हैं—"वे अत्यन्त स्वाभिमानी व्यक्ति थे। आत्म-सम्मान का खून करके यदि उन्हें स्वर्ग भी मिले तो वे ठुकराने वाले व्यक्ति थे। इस स्थिति में वे कभी कहीं दस वर्ष तक स्थायी रूप से नहीं रहे।"[27] प्रो. विजयेन्द्र स्नातक का कहना है कि उपाध्याय जी जीवन के अधिकांश समय में लेखन और भाषण को स्वीकार कर जीविका चलाते रहे। जब कभी उन्हें वेतनभोगी के रूप में काम करने का अवसर मिला, वह अपने को नौकरीपेशा व्यक्ति स्वीकार नहीं कर सके।...उनके लिए यह स्वतन्त्रता ही काम्य थी, वरेण्य थी।[28]

वस्तुतः डॉ. उपाध्याय एक बन्धन-मुक्त चिन्तक, लेखक एवं कलाकार थे। उन्हें बड़ी-बड़ी नौकरियों ने बाँधा लेकिन वे बँध कहीं नहीं पाए। उनकी अन्तिम नौकरी के बारे में प्रभाकर द्विवेदी ने लिखा है, कि "मुझे तभी लगा था कि पण्डित जी यह राजनीतिक नौकरी (दौत्य कर्म) नहीं कर पाएँगे और शीघ्र ही बन्धनमुक्त हो लेंगे लेकिन बन्धन-मुक्ति का यह तरीका अपनाएँगे, इस कटु सत्य की मैंने कल्पना भी नहीं की थी।"[29]

जैसे अपने जीवन में बँधे हुए भी डॉ. उपाध्याय मुक्त रहे वैसे ही नौकरी के सम्बन्ध में वे कहीं भी बँध नहीं पाए, यद्यपि नौकरियाँ, पद, गौरव उनके पीछे-पीछे चलते रहे।

भ्रमण

डॉ. उपाध्याय ने विश्व के प्रायः सभी देशों का भ्रमण किया है। घुमक्कड़ों

के जीवन की भाँति उनका जीवन भी काल-चक्र की तरह घूमते ही बीत गया। स्वयं डॉ. उपाध्याय ने लिखा है–"...प्रायः ज़िन्दगी भर पैरों पर ही रखा हूँ–देश में भी, विदेश में भी। कुछ ऐसा संयोग कि चलते ही रहना पड़ा है। पामीरों के बाज़ू में बदख्शाँ से एशिया-यूरोप पार अमरीका तक, फिर चीन से नेपाल तक।"[30] प्रो. विजयेन्द्र स्नातक के अनुसार–"डॉ. उपाध्याय के स्वभाव में यायावरी वृत्ति शैशवकाल से ही समाविष्ट हो गई थीं।...भारत में उन्होंने सात-आठ स्थानों में काम किया, किन्तु कहीं चार-पाँच वर्ष से अधिक नहीं टिके। विदेशों में भी यायावरी वृत्ति ने उनका साथ नहीं छोड़ा। एक देश से दूसरे देश में वे इस प्रकार आते-जाते, जैसे कोई एक कमरे से निकलकर दूसरे कमरे में जाता हो।"[31]

डॉ. उपाध्याय की यात्राओं का मूल कारण उनकी पुरातत्त्व और इतिहास सम्बन्धी ज्ञान की पिपासा थी। उनका सम्पूर्ण लेखन उनकी यात्राओं से प्रभावित रहा है, अपितु यात्राओं ने उनके ज्ञान के स्रोत खोले हैं–प्रो. कमलारत्नम् ने उचित ही लिखा है–"उनके ज्ञान-वैभव और भारतीय संस्कृति को उनके विश्व-भ्रमण ने निखार दिया था। कौन-सा ऐसा देश था जो उन्होंने नहीं देखा था, जिसकी सैर उन्होंने शुद्ध अपने बलबूते पर नहीं की थी और जिसके इतिहास, साहित्य और कला के मोतियों को अपनी वाणी में न पिरोया हो।"[32] 'पुरातत्त्व का रोमांस' पुस्तक की भूमिका में डॉ. उपाध्याय का कथन इस बात का संकेत है कि ज्ञानपिपासा विशेषकर पुरातत्त्व सम्बन्धी शोध उनकी यात्राओं का कारण बना; उन्होंने लिखा है–

"मुझे पुरातत्त्व के इन स्थलों को निकट से देखेने का सौभाग्य मिला है। इनमें से कुछ की खुदाइयों में शामिल होने का भी। कुछ स्थलों पर तो मैं महीनों तम्बुओं में रुका रहा था।"[33] इन कहानियों में जिन स्थानों के पुरातात्त्विक परिवेश को मुखर करते हुए लेखक ने सर्जना की है उनमें से प्रमुख है–तूतनखामन का ताबूत, कोणार्क, सिन्धुघाटी, श्रावस्ती, वैशाली आदि। डॉ. उपाध्याय ने मिस्र से तुर्की, लुक्सर से त्रोया (त्राय) तक और बाबुल, जुरुसलम, निनेवे, दमिश्क आदि के भग्नावशेषों का स्थानीय अध्ययन किया। मिस्री, सुमेरी, बाबुली, अक्कादी, आसूरी, खत्री, क्रीती, मिनोई, मिकीनी, ईरानी सभ्यताओं का अध्ययन किया। होमर, टाम्सन के साथ एथेन्स के 'अक्रोपोलिस' की खुदाई में भाग लिया। इण्टरनेशनल कांग्रेस ऑफ ओरिएण्टललिस्ट्स् के अधिवेशन इस्तम्बूल में भारतीय प्रतिनिध के रूप में गए। विदेशमन्त्री आलेसा बाब्लर के निमन्त्रंण पर यूगोस्लाविया और अरब लीग के सेक्रेटरी जनरल अज्जाम-पाशा के निमन्त्रण पर मिस्र का भ्रमण किया।[34]

सन् 1952 में वे पीकिंग के निरस्त्रीकरण और विश्वशान्ति सम्मेलन में भारतीय शिष्ट-मण्डल के सदस्य होकर सम्मिलित हुए।

सन् 1967 में फ्रेंच सरकार के निमन्त्रण पर डॉ. उपाध्याय पेरिस की यात्रा पर गए और फ्रेंच विश्वविद्यालयों तथा संग्रहालयों में भाषण देते रहे। सन् 1968 में शोध-कार्य हेतु उन्हें पश्चिम जर्मनी सरकार ने हाइडेलवर्ग के जूडाशियल इंस्टीट्यूट में निमन्त्रण देकर बुलाया।

सन् 1962 में मास्को अधिवेशन में भारतीय शिष्ट-मण्डल के सदस्य के रूप में डॉ. उपाध्याय ने रूस की यात्रा की। सोवियत संघ के निमन्त्रण पर वृहद् विश्वकोश के निर्माण के लिए भी उन्होंने रूस में प्रवास किया और ताशकन्द, समरकन्द, पामीर से लेनिनग्राद, मास्को आदि का अनेक बार भ्रमण किया।

भारतीय शिष्ट-मण्डल के सदस्य के रूप में उन्होंने कैन्चस (आस्ट्रेलिया) की यात्रा सन् 1971 में तथा पेरिस की यात्रा सन् 1973 में की।

इन विवरणों से स्पष्ट है कि डॉ. उपाध्याय की यात्राएँ[35] विश्वभर के परिवेश को समेटते हुए सम्पन्न हुई और उन यात्राओं की मूल प्रेरणा ज्ञान की खोज और उसके प्रचार-प्रसार में ही थी। विदेशी सरकारों, विश्वविद्यालयों एवं प्रमुख संस्थाओं के द्वारा दिए गए निमन्त्रणों पर तथा भारत सरकार के प्रतिनिधि-मण्डलों के सदस्य के रूप में उनकी यात्राएँ सम्पन्न हुई।

रचनात्मक कार्य

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय का सम्पूर्ण जीवन रचनात्मकता के लिए समर्पित रहा है। पुरातत्त्व, इतिहास, संस्कृति, साहित्य तथा कला पर हिन्दी-अंग्रेजी में सामन अधिकार का प्रभूत लेखन, उनकी रचनाशीलता का प्रमाण है। प्रो. कमलारत्नम् लिखती हैं–"एक ऐतिहासकि एवं कालिदास के अध्येता के रूप में उनका अधिक योगदान है।...इतिहास की समझ, काव्य की परख और दर्शन-चिन्तन क़ी उनकी सामर्थ्य अनोखी रही है।"[36] ऋग्वेद, कालिदास, संस्कृत तथा विश्व-साहित्य पर वैसी शोधपरक रचनाएँ अन्यत्र देखने को नहीं मिलतीं, जैसी डॉ. उपाध्याय ने हिन्दी-अंग्रेजी साहित्य को दी है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन की प्रख्यात कथाकृति 'बोल्गा से गंगा' से काफी पूर्व डॉ. उपाध्याय ने पुरातात्त्विक पृष्ठभूमि पर 'सवेरा, संघर्ष और गर्जन, कथा-कृतियाँ उद्भ्रांत मानव को अर्पित कीं।

डॉ. उपाध्याय ने भारतीय विद्याओं और संस्कृति, साहित्य की सही छवि उभारकर तथा विश्व के विद्वानों के सम्मुख प्रस्तुत करके महत्त्वपूर्ण रचनात्मक कार्य किया है।

विश्व राजनीति में भारत का उदारवादी दृष्टिकोण और उसकी विदेशनीति पर डॉ. उपाध्याय ने साधिकार लेखनी उठाई है और अपने भाषणों में भी इस छवि को निरन्तर उभारने का कार्य किया है। भारत की शान्तिप्रियता और विश्वमानवता पर उसके विश्वास का विवेचन करते हुए डॉ. उपाध्याय ने मकदूनिया के सिकन्दर

की बात कही और बताया–"उसके एक हाथ में तलवार थी, दूसरे में आग। उसका नाम सिकन्दर था। दो पीढ़ी बाद हमारे एक शालीन सम्राट् ने उसका बदला चुकाया। उसने पाँचों ग्रीक देशों में आपकी मकदूनिया में दवा बँटवाई। उसका नाम अशोक था। वास्तव में महान् था वह।"[37]

डॉ. उपाध्याय ने हैदराबाद में एशियाई अध्ययन, संस्थान की स्थापना की और सन् 1953 से 1956 तक उसके निदेशक के रूप में कार्य किया। एशिया में अपने ढंग का यह एक ही संस्थान है, जो इजिप्ट, बेबीलोन, असीरिया और भारत के इतिहास और संस्कृति पर शोध-कार्य के लिए निर्मित किया गया है।[38]

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित 'हिन्दी विश्वकोश' के सम्पादक के रूप में डॉ. भगवतशरण उपाध्याय का रचनात्मक योगदान अविस्मरणीय एवं स्तुत्य है। शोध, लेखन, भ्रमण, भाषण आदि के अतिरिक्त एक अत्यन्त मेधावी यशस्वी अध्यापक एवं सुधी शोध-निदेशक के रूप में उनका रचनात्मक योगदान सदा याद किया जाएगा।

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय का कृतित्व-परिचय

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय का रचना-संसार अत्यन्त विस्तृत एवं बहुआयामी है। विधाओं के आधार पर उनकी रचनाओं का वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार है–

निबन्ध

1. अजेया राष्ट्र-भावना; प्रगति प्रकाशन, चावड़ी बाज़ार, दिल्ली, 1966
2. कालिदासं नमामि; रणजीत प्रिण्टर्स एण्ड पब्लिशर्स, 4872, चाँदनी चौक, दिल्ली-6, प्र. सं. 1966
3. सांस्कृतिक निबन्ध; भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र. सं. 1960
4. गणिका ने कहा–साधु ने कहा; इण्डिया पब्लिकेशंस, 1966

नाटक

5. कुछ फीचर : कुछ एकांकी; भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1959

कहानियाँ

6. सबेरा, संघर्ष और गर्जन; भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1966
7. लाश पर; अज्ञात
8. मेरे लेखन की मंजिलें, 1973
9. विलासिनी; ग्रंथमाला कार्यालय, पटना
10. पुरातत्त्व का रोमांस; भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम संस्करण, 1967

उपन्यास

11. कालिदास; साहित्य-सदन, देहरादून, 1979

रिपोर्ताज़

12. सवेरा; सरस्वती मन्दिर, बनारस, 1940
13. इतिहास साक्षी है; भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1960
14. खून के छींटे इतिहास के पन्नों पर; पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली/हिन्दुस्तान पब्लिशिंग हाउस
15. बुर्जियों के पीछे; किताब महल, ज़ीरो रोड, इलाहाबाद, 1951
16. ठूँठा आम; भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1960

यात्रा-साहित्य

17. विश्व यात्री; ग्रंथमाला कार्यालय, पटना, 1947
18. वो दुनिया; आलोक प्रकाशन, बीकानेर, 1952
19. लाल चीन; बहार पब्लिकेशंस, 93, चक, इलाहाबाद, 1953
20. कलकत्ता से पीकिंग; राजपाल एंड संज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 1956
21. सागर की लहरों पर; भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1959
22. मैंने देखा; किताब महल, इलाहाबाद, 1950
23. घूमने का राज; रणजीत प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स, चाँदनी चौक, दिल्ली, 1967
24. गंगा गोदावरी; ग्रंथमाला कार्यालय, पटना

समीक्षा

25. समीक्षा के सन्दर्भ; राजकमल प्रकाशन, नेताजी सुभाष रोड, दिल्ली, 1969
26. साहित्य और कला : आत्माराम एंड संज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 1960
27. विश्व साहित्य की रूपेरखा; राजपाल एंड संज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 1957
28. कसौटी पर; रीगल बुक डिपो, दिल्ली
29. साहित्य और परम्परा
30. साहित्य के अमर निर्माता
31. नूरजहाँ; लाहेरिया सराय, पटना, 1941
32. अंग्रेजी साहित्य की रूपरेखा; राजपाल एंड संज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 1956
33. कालिदास के सुभाषित; भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1959

पुरातत्त्व, इतिहास, संस्कृति एवं कला सम्बन्धी साहित्य

34. भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण; जनवाणी प्रेस, बनारस, 1950

35. सांस्कृतिक भारत; राजपाल एंड संज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 1955
36. प्राचीन भारत का इतिहास; ग्रंथमाला कार्यालय, बाँकीपुर, पटना, 1949
37. प्राचीन यात्री, भाग-1; ग्रंथमाला कार्यालय
38. प्राचीन यात्री, भाग-2; ग्रंथमाला कार्यालय
39. प्राचीन यात्री, भाग-3; ग्रंथमाला कार्यालय
40. इंग्लैण्ड का इतिहास; ग्रंथमाला कार्यालय
41. ऐतिहासिक चरित; ग्रंथमाला कार्यालय
42. बुद्ध वैभव; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1959
43. चन्द्रगुप्त और चाणक्य; नेशनल पब्लिशिंग हाउस
44. कालिदास और उनका युग; भारतीय विद्या भवन, इलाहाबाद, 1956
45. कालिदास : जीवन और साहित्य; राजपाल एंड संज़
46. भारतीय कला और संस्कृति की भूमिका; रणजीत पब्लिशर्स, 1965
47. बाल-इतिहास, भाग-1; हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
48. बाल-इतिहास, भाग-2; 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
49. संस्कृत वाङ्मय के रत्न
50. भारतीय इतिहास के आलोक-स्तम्भ, भाग-1; किताब महल; इलाहाबाद, 1951
51. भारतीय इतिहास के आलोक-स्तम्भ, भाग-2; किताब महल, इलाहाबाद, 1951
52. यूरोपीय इतिहास के आलोक स्तम्भ,
53. साम्राज्यों का उत्थान-पतन; किताब महल, इलाहाबाद
54. सभ्य मानव का इतिहास; किताब महल, इलाहाबाद, 1950
55. राजाओं के कारनामे; चाँद कार्यालय, इलाहाबाद
56. विजयी भारत, छात्र हितकारी
57. पुरातत्त्व का रोमांस; भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1967
58. भारतीय अभिलेख; लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद
59. कला के अमर निर्माता; अज्ञात
60. सांस्कृतिक चिन्तन; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
61. भारतीय संस्कृति के स्रोत; पीपुल्स पबिलशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 1973
62. भारतीय इतिहास के कुछ रेखाचित्र; कमलाश्रम, 1948
63. प्राचीन भारत के निर्माता; ग्रंथमाला प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद
64. गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास; हिन्दी समिति, सूचना-विभाग, लखनऊ, उ. प्र., 1969
65. कालिदास का भारत, भाग-1; भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, तृतीय संस्करण 1954

66. कालिदास का भारत, भाग-2; भारतीय ज्ञानपीठ, काशी 1954
67. गुप्तकालीन संस्कृति; हिन्दी-समिति, सूचना-विभाग, लखनऊ, 1969
68. भारतीय कला की भूमिका; पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 1980

सम्पादन

69. भारतीय व्यक्ति कोश, भाग-1; भारतीय ज्ञानपीठ, काशी 1976
70. भारतीय व्यक्ति कोश, भाग-2; भारतीय ज्ञानपीठ, काशी 1976
71. भारतीय व्यक्ति कोश, भाग-3; भारतीय ज्ञानपीठ, काशी 1976
72. हिन्दी विश्वकोश, भाग-1, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
73. हिन्दी विश्वकोश, भाग-2, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
74. हिन्दी विश्वकोश, भाग-3, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
75. हिन्दी विश्वकोश, भाग-4, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
76. अंग्रेजी-हिन्दी कोश
77. कविश्री शिवमंगल सिंह सुमन; सेतु प्रकाशन, झाँसी, 1965

अनूदित साहित्य

78. स्वप्नवासवदत्ता; राजपाल एंड संज़, 1958
79. प्रतिज्ञायोगन्धरायण; राजपाल एंड संज़, 1957
80. कादम्बरी; राजपाल एंड संज़, 1957
81. मेघदूत; राजपाल एंड संज़, 1957
82. प्राचीन भारत का इतिहास, नन्दकिशोर भार्गव एण्ड ब्रदर्स, बनारस, रमाशंकर त्रिपाठी
83. सुन्दरी और नन्द; न्यू इंडिया पबिलकेशन हाउस, 1966
84. शाकुन्तलम्
85. विक्रमोर्वशी
86. मालविगाग्निमित्र

बाल तथा साक्षर-प्रौढ़-साहित्य

87. लेखन के उपकरण; सर्वोदय साहित्य प्रकाशन, वाराणसी, 1964
88. यह सोने का देश; हंस प्रकाशन, इलाहाबाद
89. संगीत और नृत्य; हंस प्रकाशन, इलाहाबाद
90. भारत की कहानी; राजपाल एंड संज़, दिल्ली
91. भारतीय संस्कृति की कहानी; राजपाल एंड संज़, दिल्ली
92. भारतीय संस्कृति के विस्तार की कहानी; राजपाल एंड संज़, दिल्ली

93. भारतीय चित्रकला की कहानी; राजपाल एंड संज़, दिल्ली
94. भारतीय मूर्तिकला की कहानी; राजपाल एंड संज़, दिल्ली
95. भारतीय नगरों की कहानी; राजपाल एंड संज़, दिल्ली
96. भारतीय संगीत की कहानी; राजपाल एंड संज़, दिल्ली, 1957
97. भारतीय साहित्यों की कहानी; राजपाल एंड संज़, दिल्ली
98. भारतीय भवनों की कहानी; राजपाल एंड संज़, दिल्ली, 1957
99. भारतीय नदियों की कहानी; राजपाल एंड संज़, दिल्ली, 1955
100. हमारे पड़ोसी; राजपाल एंड संज़, दिल्ली, 1957
101. कितना सुन्दर देश हमारा; राजपाल एंड संज़, दिल्ली
102. शीश महल की राजकुमारी; राजपाल एंड संज़, दिल्ली
103. सूरजपंखी चिड़िया; राजपाल एंड संज़, दिल्ली, 1970
104. बुद्धि का चमत्कार; राजपाल एंड संज़, दिल्ली
105. खजाने का चोर; राजपाल एंड संज़, दिल्ली
106. बिना विचारे जो करै; राजपाल एंड संज़, दिल्ली
107. शेर बड़ा या मोर; राजपाल एंड संज़, दिल्ली
108. बुद्धि का चमत्कार; ज्योति प्रकाशन प्रेस, वाराणसी
109. हमारे पहाड़; ग्रंथमाला प्रकाशन कार्यालय, पटना
110. तीन द्वार सिन्धु घहराय रे बटोहिया; ग्रंथमाला प्रकाशन कार्यालय, पटना
111. मिट्टी का महत्त्व; ग्रंथमाला प्रकाशन कार्यालय, पटना
112. मूरत और चित्र; हंस प्रकाशन, 89 मिण्टो रोड, इलाहाबाद
113. हमारे संस्कृत कवि; हंस प्रकाशन, 89 मिण्टो रोड, इलाहाबाद
114. भारत की एशिया को देन; हंस प्रकाशन, 89 मिण्टो रोड, इलाहाबाद
115. ये देश ये ल़ोग; राधाकृष्ण प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली
116. रफी अहमद किदवई; नेशनल प्रिंटिंग एवं पब्लिंशिग हाउस, लखनऊ
117. भारतीय लेखन का इतिहास; सर्वोदय प्रकाशन, वाराणसी
118. लेखन सामग्री; सर्वोदय प्रकाशन, वाराणसी
119. संक्रमण; सर्वोदय प्रकाशन, वाराणसी
120. यह भारत है; सर्वोदय प्रकाशन, वाराणसी
121. सागर का घोड़ा; राजपाल एंड संज़, दिल्ली, 1978
122. सक्का और शेरा; राजपाल एंड संज़, दिल्ली, 1978

अंग्रेजी पुस्तकें

123. इण्डिया इन कालिदास; एस. चाँद एण्ड को., रामनगर, नयी दिल्ली
124. वीमेन इन ऋग्वेद; एस. चाँद एण्ड को., रामनगर, नयी दिल्ली, 1933

125. फीडर्स ऑफ इंडियन कल्चर; पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली
126. एन्शेण्ट वर्ल्ड, इंस्टीट्यूट ऑफ एशियन स्टडीज़, हैदराबाद, 1954
127. शेड्स एण्ड शेडोज़; स्टेरलिंग पब्लिशर्स, ए-बी/9, सफदरजंग एन्क्लेव, नयी दिल्ली, 1976
128. द सन राइज़ेज ईस्ट ऑफ वेस्ट (अप्रकाशित) : इसकी पांडुलिपि श्री अरविन्द गुर्टू, नयी दिल्ली के पास है।
129. कालिदास : दि मैन एण्ड हिज वर्क; अप्रकाशित। इत्यादि।

टिप्पणी–डॉ. भगवतशरण उपाध्याय की प्रस्तुत ग्रन्थ-सूची–श्री पद्मकुमार जैन द्वारा प्रसारित प्रपत्र, हिन्दी साहित्य : आलोचना–ग्रन्थ-सूची, सं. यशपाल महाजन एवं वृहद् हिन्दी-ग्रन्थ-सूची; सं. यशपाल महाजन तथा प्रो. कमलारत्नम्, डॉ. प्रभाकर माचवे द्वारा भेजी गई पुस्तक-सूची के आधार पर तैयार की गई हैं।

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय का रचना संसार अत्यन्त व्यापक था। इतिहास और पुरातत्त्व उनके मुख्य विषय थे, लेकिन संस्कृति, कला, साहित्य, राजनीति एवं समाजशास्त्र सभी विषयों पर उन्होंने पूरे अधिकार से विपुल साहित्य-सर्जन किया। हिन्दी समीक्षा के अतिरिक्त यात्रा-साहित्य, बाल-साहित्य, उपन्यास और कहानी साहित्य, निबन्ध तथा रिपोर्ताज़ लेखन में उन्होंने अद्वितीय कार्य किया। हिन्दी-अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं में उनका साहित्य उनकी यशः-काया को अमर बनाए हुए है। उनके लेखन की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि वे एक साथ कला, साहित्य एवं इतिहास को एक ही रेखा पर मूल्यांकित करने की क्षमता रखते हैं–कोणार्क, पुरी और भुवनेश्वर के मन्दिरों में नग्न, वासनाजन्य एवं घृणित मूर्तियों का मूल कारण खोज लाने के लिए वे केवल अतीत में ही नहीं जाते, अपितु तदुपरान्त रचे गए साहित्य की धाराओं का भी मूल्यांकन करते हैं–

"वहाँ तो यौन 'आबसेशन' रहसि के चिन्तन का रहस्य बन जाता है। इसी से तो 'अष्टछाप' भक्तों तक में 'रति' और 'विपरीत' के असंयत वर्णन का लोभ संवरण नहीं हो पाता। बेनी माधव, सूर और मीरा तक को इन भावनाओं में लिपटे देख हमारी सचेत श्रद्धा पर पाला पड़ जाता है।"[39]

कठिन से कठिन सूचनात्मक विषय की प्रस्तुति में भी लेखक को ऐसी प्रवीणता प्राप्त है कि पाठक को विषय के प्रति अरुचि नहीं होती। भ्रमण के कारण प्रत्यक्ष अनुभव, भाषा की संवहन शक्ति एवं वर्ण्य-वस्तु या विषय के प्रति पूरी निष्ठा उनके लेखन को सजीव वना देती हैं उदाहरण के लिए नार्वे के साहित्य की रूप-रेखा देने से पूर्व वे जो पीठिका प्रदान करते हैं, वह पीठिका यहाँ दर्शनीय है–

"नार्वे को प्रकृति ने अपने हाथों सँवारा है। यूरोप का वह प्रायः उत्तरतम देश है। आधी रात को वहाँ सूर्य चमकता है और उषा काल उत्तरी क्षितिज़ पर लघुतम

अग्निपिण्ड उछलते हैं, अनन्त तारिकाएँ ज्वलन्त, स्वर्णमयी, नीहारिकाओं के रूप में निरन्तर उछलती टूटकर बिखरती रहती हैं। ऐसा नार्वे स्वाभाविक ही है, कवि की चेतना को जागृत करेगा।"[40]

काल का अन्तराल डॉ. उपाध्याय की लेखनी का स्पर्श पाते ही विलीन हो जाता है। उनकी कहानियों 'सवेरा, संघर्ष, गर्जन' और उपन्यास 'कालिदास' का अतीत ऐसा लगता है मानो अभी-अभी घटित हुआ है। यह भगवतशरण उपाध्याय की सबसे बड़ी उपलब्धि है। उनकी भाषा या तो पाठक को अतीत में ले जाकर खड़ा कर देती है या उनके वर्णन अतीत को वर्तमान की रेखा पर ला पटकते हैं। मानवता के शैशव की कथा का प्रारम्भ लेखक ऐसे करता है, मानों अभी-अभी सब कुछ घट गया हो–

"उषा ने जब प्राची गगन के द्वार खोले, कनकतारों से गुहा का अन्तरतम भासमान हो उठा। नारी एक कुलांच भर द्वार पर आ खड़ी हुई। धीरे-धीरे नर भी बाहर निकला, कन्धे से परिवार लपेटे–दो कुमारों तीन कुमारियों का।"[41]

इस उदाहरण में मातृसत्तात्मक परिवार के स्त्री-पुरुष सम्बन्धों एवं मर्यादाओं का बड़ा ही काव्यात्मक निरूपण किया गया है।

'वीमन इन ऋग्वेद' शोध-ग्रन्थ में लेखक ने वैदिक नारी की ज़िम्मेदारी, चरित्र, तौर-तरीके, सामाजिक और पारिवारिक जीवन का परिचय देते हुए अपने गहन अध्ययन और विस्तृत विवेचन की बानगी प्रस्तुत की है। तत्कालीन विवाह संस्था के प्रकारों का विवेचन करके लेखन ने हमारे सामाजिक स्वभावों और रीतियों-परम्पराओं की तुलना का विचार पैदा किया है।[42]

विश्व राजनीति पर विशेषकर भारत और एशिया की शान्ति पर विचार करते समय लेखक की दृष्टि स्पष्ट होती है। लेखक चीनी नीतियों का पक्षधर था और उसने जहाँ चीन की प्रशंसा की है, वहीं साम्राज्यवादी शक्तियों का डटकर विरोध भी किया है। हालैण्ड और इण्डोनेशिया के राजनैतिक सम्बन्धों का ऐतिहासिक-राजनीतिक विवेचन करते हुए डॉ. उपाध्याय ने लिखा है–

"सात समुन्दर पार से कुमुक भेजकर कमज़ोर राष्ट्र को शृंखलित रखने का प्रयत्न हालैण्ड ने भी किया था, पर इण्डोनेशिया ने विदेशी जंजीरों के टुकड़े-टुकड़े कर दिए।"[43]

राजनीतिक विचारों की अभिव्यक्ति करते समय लेखक की मुद्रा कुछ व्यंग्य और क्रोध लेकर उभरती है। भारत पर भी अमरीकी नीतियों के आक्रमणों की चर्चा करते हुए वे उसकी डालर-नीति और सी. आई. ए. की भर्त्सना करते हैं।[44]

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय का लेखन और उनकी दृष्टि बहुत व्यापक रही है। कालिदास-साहित्य पर उन्होंने सर्वाधिक कार्य किया है। पुरातत्त्व, इतिहास, समाज, संस्कृति, राजनीति, धर्म, दर्शन, कला, साहित्य, समीक्षा, कोश-सम्पादन आदि

सभी क्षेत्रों में उनके अप्रतिम योगदान को हिन्दी तथा अंग्रेजी लेखन के इतिहास में सदा स्मरण किया जाएगा। उनका कृतित्व बहुमुखी, व्यापक, युग सन्दर्भों से जुड़ा हुआ तथा प्रामाणिक है।

सन्दर्भ

1. यात्रा साहित्य का उद्भव और विकास; पृ. 1844
2. डॉ. पद्मा उपाध्याय से लेखक का साक्षात्कार; दिनांक 1-6-1986
3. कलकत्ता से पीकिंग; डॉ. भगवतशरण उपाध्याय; पृ. 17
4. सागर की लहरों पर; पृ. 12
5. डॉ. पद्मा उपाध्याय से साक्षात्कार; दि. 1-6-1986
6. कालिदास; डॉ. भगवतशरण उपाध्याय; पृ. 28
7. श्रीमती देवकी उपाध्याय से साक्षात्कार; दि. 19-7-1986
8. धर्मयुग; 26 सितम्बर, 1986
9. लोक शिक्षक; जयपुर, दि. 13-11-1982, पृ. 4
10. तदेव
11. प्रो. के. डी. वाजपेई (सागर) से लेखक का साक्षात्कार; दि. 2-3-1986
12. डॉ. विष्णुदत्त राकेश (हरिद्वार) के नाम लिखा गया डॉ. भगवतशरण उपाध्याय का पत्र; दिनांक 20-12-1980
13. हिन्दी यात्रा-साहित्य का उद्भव और विकास; पृ. 185
14. लोक शिक्षक; 13-11-1982, पृ. 4
15. प्रो. के. डी. वाजपेई से साक्षात्कार; दि. 2-3-1986
16. सागर की लहरों पर; पृ. 13
17. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के नाम पत्र; दिनांक 4 अक्तूबर, 1945
18. धर्मयुग; 26 सितम्बर, 1982
19. तदेव
20. धर्मयुग; 17 अक्तूबर, 1982
21. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली, भाग-2; पृ. 519
22. नवभारत टाइम्स; 15 अगस्त, 1982
23. धर्मयुग; 26 सितम्बर, 1982
24. श्रीमती देवकी उपाध्याय से साक्षात्कार; दि. 19-7-1986
25. साप्ताहिक हिन्दुस्तान; 12 सितम्बर, 1982, पृ. 36
26. अरविन्द गुर्टू का पत्र लेखक के नाम; दि. 7-6-1986
27. प्रो. कल्पनाथ शास्त्री का लेखक के नाम पत्र; दि. 21-4-1986
28. साप्ताहिक हिन्दुस्तान; 12 सितम्बर, 1982, पृ. 37
29. नवभारत टाइम्स; 15 अगस्त, 1982
30. सागर की लहरों पर; दो शब्द
31. साप्ताहिक हिन्दुस्तान; 12 सितम्बर, 1982, पृ. 36
32. धर्मयुग; 26 सितम्बर, 1982
33. पुरातत्त्व का रोमांस; भूमिका

33. श्री पद्मकुमार जैन द्वारा प्रस्तुत डॉ. उपाध्याय का जीवन-परिचय।
35. ये विवरण पद्मकुमार जैन द्वारा प्रस्तुत डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के जीवन की प्रमुख घटनाओं की सूची के आधार पर दिए गए हैं।
36. लेखक के नाम प्रो. कमलारत्नम् का व्यक्तिगत पत्र; 28 दिसम्बर, 1985
37. घूमने का राज; पृ. 189-90
38. यात्रा-साहित्य का उद्भव और विकास; पृ. 185
39. वृजियों के पीछे; भगवतशरण उपाध्याय; पृ. 22
40. विश्व साहित्य की रूपरेखा; पृ. 315
41. सवेरा, संघर्ष और गर्जन (सवेरा कहानी का प्रारम्भ); डॉ. भगवतशरण उपाध्याय; पृ. 3
42. वीमेन इन ऋग्वेद; डॉ. भगवतशरण उपाध्याय (डॉ. राधाकृष्णन् द्वारा लिखित भूमिका)
43. लाल चीन; पृ. 6
44. शेड्स एण्ड शेडोज़; डॉ. भगवतशरण उपाध्याय; भूमिका, पृ. 9

2

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में वस्तु-वर्णन

यात्रा-साहित्य में वस्तु-वर्णन का वही स्थान है, जो कि कथा-साहित्य में कथानक का। जैसे कथावस्तु के बिना कोई कहानी अथवा उपन्यास नहीं रचा जा सकता वैसे ही वस्तु-वर्णन के बिना यात्रा-साहित्य की रचना नहीं हो सकती।

यात्रा-साहित्य में लेखक अपने अनुभूत सत्य को ही उद्घाटित करता है इसलिए उसके वस्तु-वर्णन में उसकी अपनी अनुभूतियों और संवेदनाएँ भी रहती हैं। वह तो वास्तव में अपने चतुर्विक् जीवन का सृजन करता है—सम्पूर्ण भावना और जीवन के साथ। इतिहासकार की भाँति वह विवरण प्रस्तुत करने वाला नहीं होता।[1] डॉ. शान्ति खन्ना ने विषय-वस्तु को प्रस्तुत करने के दो ढंग बताए हैं—संस्मरण लेखक यदि अपने विषय में लिखे तो उसकी रचना आत्म-कथा के निकट होगी यदि अन्य व्यक्तियों के विषय में लिखे गए हों, तो जीवनी के निकट।[2]

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय ने अपने यात्रा-साहित्य में जो वस्तु-वर्णन प्रस्तुत किया है, उसमें न तो आत्मकथा के तत्त्व आ पाए हैं और न ही जीवन चरित के। आत्म-कथा, जीवन-चरित, रेखा-चित्र की विधात्मक गुणवत्ता प्राप्त करके भी उनका वस्तु-वर्णन यात्रा-साहित्य की रचना-शैली की मर्यादा में बँधा रहा है।

अध्ययन की सुविधा के लिए हम डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में वस्तु-वर्णन को तीन आयामों में विभक्त कर रहे हैं—

1. प्रकृति-चित्रण
2. नगर एवं ग्राम वर्णन
3. चरित्रांकन

उपाध्याय जी ने अपने यात्रा-साहित्य में वस्तु-वर्णन के अन्य पक्ष भी प्रस्तुत किए हैं, परन्तु प्रमुखता इन्हीं तीन पक्षों की रही है। वस्तु वर्णन के माध्यम से समाज और संस्कृति तथा पुरातत्त्व, इतिहास और भूगोल सम्बन्धी परिवेश का जो निरूपण हुआ है, इसकी विवेचना बाद के अध्यायों में की जाएगी। यहाँ इन

तीन प्रमुख आयामों में अभिव्यक्त वस्तु-वर्णन का विहंगावलोकन किया जा रहा है–

प्रकृति-चित्रण

प्रकृति-चित्रण के द्वारा यात्रा-साहित्यकार के सौन्दर्य-बोध को जाँचा-परखा जा सकता है और वही सौन्दर्य-बोध लेखक को साहित्यिक यायावर की कोटि में ला खड़ा करता है, क्योंकि सौन्दर्य-बोध की दृष्टि से उल्लास की भावना से प्रेरित होकर यात्रा करने वाले यायावर एक प्रकार से साहित्यिक मनोवृत्ति के माने जा सकते हैं और उनकी मुक्त अभिव्यक्ति को यात्रा-साहित्य कहा जा सकता है।[3] डॉ. रघुवंश यात्रा-साहित्य में प्रकृति-चित्रण पर महत्त्व देते हुए एक अन्य स्थान पर लिखते हैं–"यात्रा का बहुत बड़ा आकर्षण प्रकृति की पुकार में है। यायावर वही है, जो चलता जाय, कहीं रुके नहीं, कोई बन्धन उसे नहीं और जो दर्शनीय है, ग्रहणीय है, स्मरणीय है अथवा संवेदनीय है, उसका संग्रह करता चले–या यों कहें कि जो मुक्तभाव से, अनुभूतियाँ सँजोता हुआ देश-काल में फैले अनन्त जीवन में साँसें लेता हुआ यात्रा नहीं करता, वह यात्रा का साहित्य नहीं दे सकता, विवरण प्रस्तुत करता है।"[4]

यात्रा-साहित्य में प्रकृति-चित्रण केवल यथा-तथ्य कर देने से उत्कृष्टता नहीं आती, अपितु प्रकृति के नाना रूपों में घूमते हुए लेखक की अपनी प्रतिक्रिया उसे संवेद्य बनाती है। डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत लिखते हैं–"बाह्य जगत् की प्रतिक्रिया से लेखक के हृदय में जो भावनाएँ जगती हैं, वह उनको अपनी सम्पूर्ण चेतना के साथ व्यक्त कर देता है, जिससे शुष्क विवरण मधुर और भाव-विभोर करने वाले हो जाते हैं।"[5]

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय ने अपने यात्रा-साहित्य में प्रकृति के नाना-रूपों का मनोहारी चित्रण किया है। पीकिंग के पर्वतीय प्राकृतिक सौन्दर्य का एक गतिमय चित्रण देखिए–

"दृश्य जैसे फैला जाता है।...जो कुछ प्रकृति का उदार हृदय दे सकता है, जो कुछ मनुष्य की कला और कौशल मूर्त कर सकता है, वह सारा इस स्थल पर एकत्र हो गया है। बगीचे और फूल, निकुंज और झुरमुटें, पहाड़ियाँ और झीलें, द्वीप और फूल, मन्दिर और पगोडे अपने सम्पूर्ण प्राकृतिक और मानव कलित वैभव के साथ एकत्र उठ गए हैं। पहाड़ियों में सदियों का ऐश्वर्य भरा पड़ा है। उनमें वह सब कुछ है, जो चीन का वैभव और कला दे सकी है... ।"[6]

प्रकृति का मानवीकरण रूप में चित्रण अधोलिखित उद्धरण में द्रष्टव्य है, साथ ही लेखक ने यहाँ चीन के सहज प्राकृतिक सौन्दर्य के समक्ष पश्चिमी देशों की कृत्रिमता और बासीपन पर भी टिप्पणी की है–

"और देखता चला जाता है, प्रकृति की अनुपम छवि जहाज़ के इस दाहिने झरोखे से। पहाड़ और जंगल, खेत और मैदान, नदी और झील नीचे बिखरे पड़े हैं। फैले मैदानों में हरी घास और ऊँचे पौधों के बीच पानी की धारा चाँदी-सी चमक रही है। लगता है–प्रकृति नहा-धोकर बाल बिखेरे चमकती माँग काढ़े पड़ी है। उसकी अभिराम साड़ी दूर तक फैली पहाड़ों और जंगलों पर अपने आँचल का साया डालती चली गई है। जगह-जगह हरे घूँघट के बीच से जैसे चीन के गाँव जब-तब झाँक लेते हैं और उनकी सादगी और ताजगी हमारी स्मृतियों के पश्चिमी विशाल नगरों के बासीपन पर उमड़ पड़ती है।"[7]

डॉ. उपाध्याय अपने प्रकृति-चित्रण में परिगणन शैली का सहारा लेते हैं, लेकिन सहज ही उन निरूपणों में प्रकृति सजीव हो उठती है। चित्रात्मकता और बिम्बों की सजीवता उनके यात्रा-साहित्य को सहज संवेद्य बना देती है। लेखक द्वारा अपनी अमरीका यात्रा में जहाज से समुद्र में डूबते सूर्य का चित्रण एक सुन्दर उदाहरण है–

"शाम के खाने की घण्टी बज चुकी थी, परन्तु सूरज का लाल गोला क्षितिज की ओर अधोधः उतरता जा रहा था। पहले ही खिड़की से जब वह दूर की आकाश रेखा से उतरने लगा, तब जान पड़ा जैसे उसका विम्ब खिड़की को भर रहा है। वड़ा मनोरम उसका रूप था। सब डेक पर चले गए और उस अद्भुत विभूति का तिरोहित होना बड़े मनोयोग से देखने लगे। पतन कितनी तीव्र गति से होता है।"[8]

यहाँ द्रष्टव्य है कि लेखक केवल प्रकृति का विवरण ही नहीं देता, अपितु अपनी भावनाएँ, संवेदनाएँ और प्रतिक्रियाएँ भी व्यक्त करता चलता है। सूर्य को अद्भुत विभूति के रूप में रूपायित करना और पतन की तीव्र गति का दार्शनिक निरूपण करना जहाँ लेखक की चिन्तनशीलता का द्योतक है, वहीं वह वर्णन को साहित्यिकता प्रदान करता है।

डॉ. सुरेन्द्र माथुर का मानना है कि हिन्दी यात्रा-साहित्य में पार्वत्य प्रकृति के प्रति अधिक आकर्षण देखा जाता है। वे लिखते हैं–"प्रकृति मानव की आदिम सहचरी है। आदिकाल से प्रथम पुरुष ने जब इस पृथ्वी पर अपने नेत्र खोले तो उसको सर्वप्रथम प्रकृति का ही साहचर्य एवं सहयोग प्राप्त हुआ। आदिकाल के मानव ने अब चेतना उपलब्ध की, तो उसने स्वयं को हिमाच्छादित उत्तुंग पर्वत-श्रेणियों से परिवृत्त पाया। तब भला अकृत्रिम पर्वतीय प्रदेश की यात्रा करने वाला यात्री-लेखक इस प्राकृतिक दृष्टि से क्यों वंचित रह सकता था।"[9]

पर्वत-प्रदेशों के सौन्दर्य के प्रति डॉ. उपाध्याय को भी सहज अनुराग है। पीकिंग से शंघाई यात्रा में लेखक ने वायुयान से पर्वत-प्रदेशों की हरियाली पर मंडराते हुए मेघ-शावकों का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है–

"उनचासों हवाएँ स्तब्ध हैं। बादलों के समूह दूर नीचे विचरते हुए दीख रहे

हैं। कुछ सर-सर उड़ रहे हैं, कुछ धवल गायों की तरह जैसे नीचे की हरियाली देख मचल पड़ते हैं। और उनको भेदकर जब कभी नज़र उस हरियाली तक पहुँच जाती है, जो ज़मीन पर बिछी हुई है, जो पहाड़ों की चोटियों तक मढ़ी हुई-सी चढ़ती चली गई है, तो अहसास होता है कि प्रकृति के ज़ादूगर ने मोटे गुदगुदे कालीन बिछा दिए हैं।"[10]

प्रभाकर द्विवेदी ने उचित ही लिखा है कि डॉ. उपाध्याय के लेखन में काव्य बोलता है।[11] उनके यात्रा-साहित्य में वर्णित प्रकृति-रूपों में उनका काव्यात्मक रूप सर्वाधिक मुखर हुआ है। वर्णनों में भवात्मकता एवं भाषा की आलंकारिकता गद्य-काव्य जैसी सृष्टि करने में सक्षम होती है; कविवर नरेश मेहता को लिखे अपने पत्र में लेखक ने प्रातः वर्णन काव्यात्मक शैली में ही किया है–

"तारे जो रात भर चमकते रहे थे, अब सो चले थे। चाँद अब उतना सफेद न था। हल्का पीलापन उस पर छा गया था। उसकी ज्योति मंद पड़ गई थी, पर उषा की ललाई के बावजूद उसकी चाँदनी जगत् पर अपनी सुकुमार सुषमा डाले हुए थी। महीन रुई की चादर-सा एक फुल्का बादल उसे ढके हुए था, पर चाँद झिलमिल जैसे उसके पीछे से झाँक रहा था।"[12]

बादलों का एक और मनोहर दृश्य देखिए–हालैण्ड की ओर वायुयान से प्रस्थान करते हुए प्रकृति को देखकर लेखक कवि हो उठता है–

"अभी हाल जब जहाज कोपेनहागेन से निकला था, तब बादल थे–सफेद, हरे, काले, बादल; साफ, गँदले बादल; बालू के टीलों-से उठते-गिरते रुई के अम्बारों-से बादल। देर से उनके ऊपर था, आसमान के ताम्र चंदोवे तले चमकती धूप के स्पर्श में उड़ता और अब नीचे उतर रहा था, हरी-नीली क्यारियों के ऊपर, मखमली मैदान लाँघता हवाई जहाज़ सुई की बताई दिशा में उड़ा जा रहा था।"[13]

समुद्री यात्रा में प्रकृति-सौन्दर्य के प्रति लेख का व्यामोह और रंग-चित्रों की अद्भुत छटा का अंकन कितना मोहक बन पड़ा है, देखिए–

"दूर तक दृष्टि परे पार, यह समुद्र फैला हुआ है। गहरा, हरा, हल्का नीला, बैंगनी रंग बदलता। सुबह, बादलों की छाया तले उसका हरापन गहरा होता है, फिर जैसे-जैसे सूरज आसमान पर चढ़ता जाता है, वैसे-ही-वैसे पानी का रंग गाढ़ा होता जाता है और उसकी लहरें ऊँची उठ-उठकर निरन्तर बिखरती रहती है, अटूट, अनवरत।"[14]

डॉ. उपाध्याय के परवर्ती लेखकों में मोहन राकेश के यात्रा-वर्णन में भी समुद्र-तटीय रंगों का ऐसा ही रंग-परिवर्तन देखा जा सकता है–

"जिस रास्ते से आया था, उस रास्ते से लौटने की बजाय अब मैं रेत पर बैठकर नीचे 'बीच' की ओर फिसल गया और वहाँ मिले-जुले रंगों की रेत पर चलने लगा। लाल आँधी और काली घटा के रंगों को मिला देने से जितनी तरह के हल्के

गहरे रंग मिल सकते हैं, वे सब रंग उस तट की रेत में दिखाई दे रहे थे।"[15]

डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में प्रकृति-चित्रण का फलक बहुत बड़ा होता है, जैसे किसी चित्रकार ने सम्पूर्ण सृष्टि को ही रंगों में भरने की ठान ली हो। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्रकृति बिम्बों के माध्यम से वे अपने भावों, विचारों एवं स्वभावतगत विशेषताओं का उल्लेख जाने-अनजाने कर देते हैं; उनका अन्तर कहीं-न-कहीं तरंगायित होता रहता है। प्रकृति अनेकशः उनके अन्तःस्फुरणों का प्रस्फुटीकरण करती हुई दिखाई देती है; यथा–

"बर्फ जब गिरती है, प्रकृति उदास हो जाती है; जमीन-आसमान दोनों जैसे दाढ़ें बैठाकर चुप हो जाते हैं। कोपेनहागेन पहुँचने के कुछ पहले से ही बर्फ़ गिरने लगी थी और क्षितिज तक फैली सफेदी की तहों पर गिरती रुई की अपनी नयी परत नीरव पसारे जा रही थी। बर्फ़ का गिरना देखने में मुझे भला तो लगता है, पर उदास हो जाया करता हूँ।"[16]

प्रकृति के दो रूप डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में मिलते हैं–

(1) मुक्त प्रकृति अथवा नैसर्गिक प्रकृति।

(2) मानव द्वारा अलंकृत प्रकृति अथवा कृत्रिम प्रकृति।

मुक्त प्रकृति-चित्रण की चर्चा अभी की जा चुकी है; लेकिन मानव-सृजित प्रकृति के प्रति लेखक उतना ही सचेत दिखाई देता है। मानव-सृष्टि के प्रति लेखक के मन में सदा प्रशंसा भाव रहा है; यथा–

"जहाज़ निःशंक चला जा रहा है, समुन्दर की छाती चीरता, उसकी गरज़ पर अपने डीज़ल-चालित यन्त्र से व्यंग्यपूर्ण अट्टहास करता। क्यों ?

क्योंकि उस पर मनुष्य है, मनुष्य जिसने आज आकाश और समुद्र, सब पर अधिकार कर लिया है, सबका वह स्वामी है क्योंकि वह सीधा खड़ा हो लेता है, क्योंकि उसकी कमर सीधी है, वनमानुस की तरह नहीं। क्योंकि उसकी चार उँगलियों के आगे-सामने एक अँगूठा है।"[17]

हॉलैण्ड के लम्बे-चौड़े खेतों, हरे-भरे मैदानों, सीमेण्ट-टार की बनी सुन्दर चौकोर घेरती नहरों की प्रशंसा करते हुए डॉ. उपाध्याय बताते हैं–इन्हें कुदरत ने नहीं, आदमी की औलाद ने बनाया है। डच कहते हैं–"भगवान् ने सारी दुनिया बनाई, सिवा हॉलैण्ड के। हालैण्ड को सिरजा स्वयं डचों ने।"[18]

मानव-रचित प्रकृति की विशेषताएँ नगर-ग्राम-वर्णन में भी देखी जा सकेंगी. लेकिन प्रकृति के दोनों–(नैसर्गिक तथा कृत्रिम) रूप जब एक ही फलक पर चित्रित होते हैं, तब लेखक मानो नैसर्गिक सृष्टि एवं मानव सृष्टि दोनों के प्रति अपने कलाकार को समर्पित कर देता है, कवि का मन कह उठता है। हांगकांग की रात का एक मनोरम चित्र–

"पहाड़ी ढाल पर बने खाड़ी पार के मकानों के असंख्य दीप सहसा जल उठे।

दीप वहाँ पहले भी थे, शायद सूरज डूबने के पहले भी और जल भी रहे थे, केवल ग्रहपति के हतप्रभ होते ही उनकी पीली किरणों ने असंख्य विद्युत्-तारकों को मलिन कर दिया था। रात्रि ने अभी पहला श्याम-वसन धारण नहीं किया था, जिससे विद्युत्-प्रकाश म्लान थे, पागल की दृष्टि से—रिक्त।''[19]

लेखक ने प्रकृति के विविध रूपों के मार्मिक चित्र प्रस्तुत किए हैं, लेकिन वे सब-के-सब वस्तुनिष्ठ नहीं है, उनमें लेखक का 'स्व' सर्वत्र विद्यमान है। लेखक की कलात्मकता, चित्रात्मकता, सूक्ष्म निरीक्षण-क्षमता तथा भाषा-शैली की सुबोधता उसके प्राकृतिक बिम्बों को छायावादी काव्य-बिम्बों की भाँति सहज, संवेद्य, ग्राह्य एवं रोचक बना देती है, लेकिन लेखक का प्रकृति-चित्रण सर्वत्र यथार्थ से अनुबंधित रहा है। वर्णन में काल्पनिक-आलंकारिक विशिष्टता में भी उसकी विश्वसनीयता बनी रहती है, यही डॉ. उपाध्याय के प्रकृति बिम्बों की सबसे बड़ी विशेषता है। उदाहरणस्वरूप प्रातःकाल का एक रंग-चित्र यहाँ और प्रस्तुत किया जा सकता है—

''प्राची रंगों के समुद्र में डूबा हुआ था। एक लम्बी पट्टी पानी की हिलती हुई विशाल पत्ती की तरह क्षितिज को जैसे घेरे हुए थी। उसके नीचे आकाश अनेक रंगों में जगमगा रहा था। सारे रंग जैसे एक साथ पिघलकर ऊपरी आसमान को पिघले राँगे-सा बना रहे थे। रंगों का वह सोपान-मार्ग फिर धीरे-धीरे ऊपर उठ चला, एक सोने का धागा चमका, जो ऊपर उठा, फैला। सहसा एक लाल रेखा खिंच गई और फटती हुई पौ से जैसे रक्त की बाढ़ लुढ़क गई—सूरज जन्मा।''[20]

नगर एवं ग्राम-वर्णन

नगरों का विकास मानव-सभ्यता के विकास की गाथा है और ग्रामों की सहजता-सरलता मानव की सरलता की सच्ची तस्वीर। डॉ. उपाध्याय ने अपने यात्रा-वर्णन में वस्तुतः मानव-जीवन को ही अपने वर्णन का मुख्य लक्ष्य माना है। नगर-ग्राम-वर्णन के माध्यम से लेखक ने जहाँ मानव के विकास के सोपानों का दिग्दर्शन कराया है, वहीं उसकी प्राकृतिक उदारता, सहजता, प्रेम तथा मानवता का चित्रण किया है; जहाँ पश्चिम की मशीनी सभ्यता के बीच पिस रही मानवता का चित्रण किया है, वहीं पूर्वी (विशेषकर चीन के) ग्रामों के उत्फुल्ल जीवन को भाषा दी है।

डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में नगर-ग्राम वर्णन भी कोरे वर्णन न रहकर लेखक की कलात्मकता का स्पर्श पाकर स्थायी महत्त्व के चित्र बन गए हैं—

न्यूयार्क की चहल-पहल, व्यस्तता, ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं और अत्याधुनिक नागरिक सम्पदाओं को देखकर लेखक को चकाचौंध करने लगती है, उसका सिर चकराने लगता है। चाँद-तारों को देखने की इच्छा उसे नहीं होती। जार्ज होटल की चौदहवीं मंजिल की खिड़की से लेखक न्यूयार्क के इस दृश्य का चित्रण करता है—

"...और ढुलकती जा रही है—ये कारें, ट्रकें, बसें, अपनी चमकती चींटियों की-सी कतार में। एक की दुम, दूसरी की नाक से लगी है, उसकी दुम तीसरी की नाक से और चौथी की पाँचवीं से, छठी की सातवीं से और...इस प्रकार यह कतार है अनादि प्रवाह-सृष्टि की जिसका कहीं आरम्भ नहीं प्रतीत होता, अन्त नहीं। परन्तु अविच्छिन्न है यह, योनियाँ अनन्त हैं, प्राणियों की संख्या की कल्पना कष्ट-कल्पना है।"[21]

डॉ. उपाध्याय को अपनी चीन-यात्रा में भी न्यूयार्क की व्यस्तता और यान्त्रिकता का स्मरण आता रहा है—

"न्यूयार्क याद आया, जहाँ की तेजी की बस कुछ न पूछो। लोग किसी अदृश्य मन्त्र से संचालित प्राणियों की तरह चुपचाप एक गति से, गति की एक रफ्तार से, निरन्तर चलते रहते हैं, जैसे कहीं आग लगी तो।"[22]

चीनी ग्रामों की सुन्दरता का वर्णन करते हुए भी लेखक तुलनात्मक शैली में पश्चिमी विशाल नगरों के बासीपन की याद करता है—

"जगह-जगह हरे घूँघट के बीच से जैसे चीन के गाँव जब-तब झाँक लेते है और उनकी सादगी और ताजगी हमारी स्मृतियों के पश्चिमी विशाल नगरों के बासीपन पर उमड़ पड़ती है और हम उड़ते चले जा रहे हैं।"[23]

नगर एवं ग्राम वर्णनों में लेखक की चित्रात्मकता एवं कलात्मक यथार्थपरकता सर्वत्र देखी जा सकती है। वायुयान से कलकत्ता छोड़ते समय उसके स्मृति-चित्र ऐसे लगते हैं, मानों किसी कलाकार ने चित्र बनाकर उस पर पानी फेर दिया हो—

"प्लास्टिक की मढ़ी खिड़की से जो बाहर देखा, तो उस महानगर की बुर्जियाँ, मन्दिर, खम्भों की कतारें, महल-कंगूरे दृष्टि-पथ में विलीन होते जा रहे थे। धीरे-धीरे वे दूरी में खो गए।"[24]

पीकिंग नगर का ऐसा ही स्मृति-चित्र लेखक के मन पर उभरकर पाठक को आह्लादित कर देता है—

"स्मृति में पीकिंग की नयी दुनिया लहराने लगी हैं। उसकी ऊँची बुर्जियों के कंगूरे, हमारे जहाज की आदमकद ऊँचाई को भेद जैसे अपनी परिधि में खड़े हैं। पीकिंग के सम्राटों के महल, चीनी मन्दिरों के अभिराम कलश, उनकी ऊँची छतों के लटके उसारे, मानव-वर्जित रनिवासों की नीली खपरैलें बार-बार आँखों की राह मन पर उतर आती है।"[25]

नगर एवं ग्राम चित्रण करते समय लेखक केवल उनके भवन, सड़कें, कंगूरे आदि ही नहीं गिनाता है, अपितु वह उसके अतीत पर भी विहंगम दृष्टि डालता चलता है। उदाहरण के लिए विश्व के सुन्दरतम नगरों में से एक 'ऐमस्टर्डम' का वर्णन करते हुए लेखक उसके निर्माण के पीछे छिपे शोषण की भी चर्चा करता है—

"और शहर ? शायद ही ज़मीन पर इससे अधिक सुन्दर शहर हो।

साफ-सुन्दर सड़कें एक-दूसरी को समानान्तर काटतीं, लम्बी-चौड़ी उसी प्रकार एक-दूसरी को काटतीं समानान्तर नहरें और उनके तट पर खड़े विशाल लाल भवनों की अटूट परम्परा—यही है ऐमस्टर्डम। लाल मकान, लाल ईंटों के बने, गहरे रक्त से लाल जो सदियों के साम्राज्यवादी शोषण से खड़े हुए हैं, जिनमें दूर के गुलामों की कराह है, किसानों की चीख-पुकार है, आहें हैं, आँसू हैं।''[26]

डॉ. उपाध्याय नगर अथवा ग्राम-वर्णन करते समय उसके समूचे वातवरण को मुखर करते हैं, वे उसका अतीत और वर्तमान एक साथ तौलने की क्षमता रखते हैं। चीन के एक ग्राम का वर्णन करते समय लेखक ने वहाँ की सफाई, स्वास्थ्य, ग्रामवासियों की प्रसन्नता तथा आत्मविश्वास का वर्णन किया है। उस गाँव का अतीत जमींदारों के आतंक से भरा है। जमींदार की बेरहमी, प्रकृति के कोप-स्वरूप भयंकर अकाल और ज़मींदार को लगान न दे पाने पर बेटा-बेटी के गिरवी रखे जाने की प्रताड़ना—लेखक के ही शब्दों में—''बेटी गिरवी रखे जाने का मतलब क्या है, बताना न होगा, पीकिंग, शंघाई और कान्तोन के चकले, जनरलों और ज़मींदारों के हरम, होटलों और बन्दरगाहों के आतिथ्य भवन उसका उत्तर देंगे।''[27] लेकिन आज के चीन में माओ की छाया में इस गाँव के मुखिया को पता है कि उसके खेत, अन्न, ज़मीन, आमदनी उसकी अपनी है और स्थाई है। उसकी आँखों में नयी चीनी साम्यवादी सरकार के प्रति कृतज्ञता के भाव है।[28]

शंघाई नगर के वर्णन में भी लेखक ने वेश्यावृत्ति पर चोट की है—

''हम वेश्याओं, चोरों ओर भिखमंगों की दुनिया से लौट आए हैं, उस दुनिया से—जहाँ न वेश्याएँ हैं, न चोर हैं, न भिखमंगे और न वहाँ मक्खियों की घिनौनी भिनभिनाहट है।...हम उस ज़मीन पर हैं, जहाँ के सामाजिक-आर्थिक जीवन की प्रतीक वेश्याएँ हैं, चोर और भिखमंगे हैं।...यह हांगकांग है—प्रशान्त महासागर के तट का राजा।''[29]

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि डॉ. उपाध्याय के द्वारा किए गए नगर-ग्राम-वर्णन वस्तुनिष्ठ होते हुए भी लेखक की संवेदनाओं से प्रभावित हैं। वस्तुतः उनके वर्णनों में समाज-संस्कृति और कलाएँ वस्तु-वर्णन के माध्यम से भी यत्र-तत्र मुखरित होती रहती है। उनके वर्णनों में पूरा-का-पूरा वातावरण और उस वातावरण की पृष्ठभूमि मुखर होती रहती है।

चरित्रांकन

यात्रा-साहित्य में चरित्रों का निरूपण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष है, यद्यपि उपन्यास, कहानी, संस्मरण, रेखाचित्र की भाँति यात्रा-साहित्य में चरित्रों का सम्पूर्ण वृत्तान्त एवं उसकी विशेषताएँ प्रस्तुत नहीं की जा सकतीं। यात्रा-साहित्य के चरित्र केवल उतने ही उभर पाते हैं, जितने कि लेखक के सम्पर्क में आ पाते हैं। मोहन

राकेश ने अपनी प्रख्यात यात्रा-पुस्तक 'आखिरी चट्टान तक' की भूमिका में अपने चरित्रों के बारे में महत्त्वपूर्ण बात कही है कि वे अधूरे और परस्पर असम्बद्ध होते हुए भी अब एक कैन्वस पर साथ है—हालांकि वह कैन्वस भी जीवन के विशाल कैन्वस का छोटा-सा टुकड़ा ही है।[30] यह बात सिद्धान्ततः और व्यवहारतः डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में भी लागू होती है। उनके सभी चरित्र उनके वर्णनों में एक निश्चित अवधि तक उभरते हैं और लय हो जाते हैं, परन्तु अपनी अमिट प्रभाव छोड़ जाते हैं।

अपने भ्रमण के दौरान लेखक ने आइन्सटाइन, एज़रा पाउण्ड, पर्लबक, बर्टेण्ड, रसेल, ट्वाइन्बी तथा आल्ड्स हक्सले आदि से साक्षात्कार किए और उनके चरित्रों की एक-एक झलक पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत की। विशिष्ट व्यक्तियों से साक्षात्कार की दृष्टि से उनकी पुस्तक 'वो दुनिया' के सम्बन्ध में डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी लिखते हैं—''भगवतशरण उपाध्याय ने 'वो दुनिया' में कई प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों का वर्णन किया है। महापुरुषों और संस्मरणों का साहित्य में स्थायी महत्त्व है।''[31]

चरित्रों के प्रभाव की दृष्टि से डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में वर्णित चरित्रों का वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है, यथा—

(क)	1. विशिष्ट चरित्र	2. सामान्य चरित्र
(ख)	1. पुरुष चरित्र	2. नारी चरित्र
(ग)	1. प्रत्यक्ष चरित्र	2. स्मृति में उभरे हुए चरित्र
(घ)	1. व्यष्टिगत चरित्र	2. समष्टिगत चरित्र
(ङ)	1. ऐतिहासिक चरित्र	2. वर्तमान चरित्र

विशिष्ट चरित्रों में बड़े-बड़े वैज्ञानिक, चिन्तक, राजनेता एवं साहित्यकार हैं और सामान्य चरित्रों में सर्वहारा, मज़दूर-किसान आदि। अनेकशः नारी-चरित्र उपाध्याय जी के वर्णनों में अधिक मुखर हुए हैं। प्रत्यक्ष चरित्र वे हैं जो यात्रा के दौरान लेखक के समक्ष प्रकट होते हैं और स्मृति में उभरे हुए चरित्र वे हैं, जिन्हें लेखक अपने घर-परिवार और अपने देशीय परिवेश में छोड़ आया है और अपनी यात्रा में भी उन्हें भुला नहीं पाया है। 'कलकत्ता से पीकिंग' पुस्तक में जिन-जिन व्यक्तियों को पत्र लिखे गए हैं उनके चरित्रगत गुण-दोष भी इन वर्णनों में मुखर हुए हैं। व्यष्टिगत चरित्र वे हैं जो अकेले उभरकर आते हैं। विशिष्ट व्यक्तियों के चरित्र ही व्यष्टिगत चरित्र हैं; लेकिन कुछ ऐसे चरित्र भी हैं, जो समूह में उभरते हैं, उन्हें समष्टिगत चरित्रों की श्रेणी में रखा जा सकता है। समष्टिगत चरित्र पूरे समाज, देश अथवा परिवेश का उद्‌घाटन भी करते हुए प्रतीत होते हैं। डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में उभरने वाले कुछ प्रमुख चरित्रों की चर्चा यहाँ की जा रही है—

नाज़िम हिकमत तुर्क कवि है, जिसकी आवाज़, जिसके गीतों के तराने अंकारा

और कुसतुंनतुनियाँ की जेलों में आज भी गूँज रहे हैं। डॉ. उपाध्याय को नाजिम हिकमत से भेंट का अवसर पीकिंग के शान्ति-सम्मेलन में मिलता है। कवि से प्रथम भेंट का प्रभाव तथा उसकी छवि लेखक के मन पर इस प्रकार अंकित हो गई है–

"वह नाज़िम हिकमत है, विख्यात तुर्की शायर, जिसकी आवाज़ सालों अंकारा की जेलों की खामोशी भरती रही है। ऊँचा तुर्क अपने कायलों की भीड़ के बीच खम्भे-सा खड़ा है। जिस्म से तगड़ा है, पर हाथ में छड़ी लिए चलता है। बालों में जहाँ-तहाँ सफेदी है, शायद साठ का हो चुका है। झबरी मूँछों में मुस्कान सदा बिखरी रहती है, खुली हँसी द्वारा झेली मुसीबतों पर वह सर्वदा जैसे व्यंग्य करता रहता है।"[32]

लेखक, कवि हिकमत से हुई भेंट के अतिरिक्त उसके ओजपूर्ण काव्य तथा अन्य रोचक घटनाओं का भी उल्लेख करता है। नये चीन के भाग्य-विधाता माओ की ओजस्विता और तेजस्विता से डॉ. उपाध्याय बहुत प्रभावित हैं। उनके व्यक्तित्व की छवि को वे उतनी ही खूबी से अंकित कर देते हैं–

"पीला, गोरा, मझोले कद का माओ। चेहरे पर हल्की सहज मुस्कराहट जो खूँख्वार भेड़िये तक पर छा जाय। भरा बदन, ललाट ऊँचा चौड़ा, काले बाल, पीछे लौटे हुए। चीनी, सहज चीनी, हृदय के निम्नतम तल तक चीनी। देखता रहा गुनगुनाता रहा–क्या यही माओ है ?"[33]

लेखक ने अनुपम निर्भीकता के प्रतीक और सहज गतिशीलता की मूर्ति पं. जवाहरलाल नेहरू के व्यापक चारित्रिक प्रभाव को अभिव्यक्त करते हुए लिखा है–

"नेहरू, जगत् के देश-प्रेमियों का प्यार, भारतीय मानवता की इस सरकार में एकमात्र आशा और प्रकाश, नेहरू, जो भेरी नाद सुनकर युद्ध से दूर नहीं रखा जा सकता है, घमासान के बीच जिसका स्थान है। नेहरू, जिसकी उत्कट आशावादिता गिरे हुओं में साँस फूँकती है, जिसका विश्वास बुझे दीपक की लौ जला देने की शक्ति रखता है, जिसका नाम गतिशीलता का पर्याय है।"[34]

केलीफोर्निया के प्रसिद्ध अंग्रेजी साहित्यकार डॉ. आल्ड्स हक्सले का चरित्रांकन करते हुए लेखक ने वस्तुतः रेखा-चित्रांकन ही किया है–

"वे आए और बड़े तपाक से मिले। आदतें, चेष्टाएँ, खासे अंग्रेज की-सी थीं। रिजर्व के साथ आत्मीयता का अच्छा संगम था, शरीर सुन्दर बलिष्ठ ऊँचा, आंखें खासी खराब, अंग्रेजी साहित्य की विमल विभूति, संसार के प्रखरतम मेधावी परिवार के वंशधर–ये थे–आल्ड्स हक्सले।"[35]

सामान्य चरित्रों में ऐसे चरित्र हैं, जो आर्थिक-सामाजिक दृष्टि से सम्मानित-प्रतिष्ठित न होते हुए भी वैचारिक दृष्टि से सम्पन्न है अथवा उनसे लेखक की भेंट उन्हें सामान्य से विशिष्ट बना देती है। लेखक के सहयात्री भी गोपालन जब एक चीनी मज़दूर लड़की से पूछते हैं–"यदि च्यांग चीन पर हमला करे तो वह

क्या करेगी ?"

इस पर वह मज़दूर लड़की उत्तर में कहती है–"क्यों, लड़ेंगे और उसे धूल चटा देंगे...हमें मालूम है स्वदेश के लिए कैसे मरा जाता है...आज़ादी से प्यार करने वाले कभी आक्रान्ताओं से हार नहीं सकते।"[36]

उस सामान्य मज़दूर लड़की के कथनों से यह स्पष्ट है कि वह सामान्य होते हुए भी विशिष्ट एवं प्रभावी चरित्र बन जाती है। उसे अपने देश से अगाध प्रेम है और वह विश्व-राजनीति तथा सर्वहारा के अधिकारों के प्रति जागरूक है।

प्रसिद्ध ब्रिटिश जहाज़ 'क्वीन मेरी' में लेखक एक बार बाल कटाने पहुँचा तो गलती से ज़नाने सेलून मे प्रवेश कर गया, वहाँ उसकी भेंट जिस अंग्रेज नाइन से हुई, वह अंग्रेज नाहन सामान्य होते हुए विशिष्ट है, सुन्दरी है। प्रथम श्रेणी के रेल डिब्बे में यात्रा करते समय लेखक उसी नाइन का मौन सहयात्री बना। किसी रहस्यमय कारण से युवती नाइन ने लेखक को पहचानते हुए भी न पहचानने का अभिनय किया और उससे बात भी नहीं की। झल्लाकर यात्रा की समाप्ति पर लेखक ने उस तेवर वाली अंग्रेज नाइन से कह ही डाला–

"मैडम, समूचे संसार का घुमक्कड़ हूँ। सारी दुनिया लाँघ चुका हूँ। यह मेरी सबसे छोटी यात्रा थी, पर विश्वास मानें यह सबसे लम्बी सिद्ध हुई।"[37]

महिला ने उत्तर दिया–"पर, आप बोले क्यों नहीं ?"

फिर परिचय, हँसी और प्रेमभरी विदा।

यही क्षणिक स्मृति उस चरित्र को उभारने में सक्षम है।[37]

पुरुष-चरित्रों में डॉ. उपाध्याय ने केवल विशिष्ट व्यक्तियों के ही चित्र प्रस्तुत किए हैं, लेकिन जहाँ सामान्य पुरुष चरित्र सामने आए हैं वहाँ सर्वहारा का प्रतिनिधित्व करते हुए दिखाई देते हैं। सर्वहारा चरित्रों के वर्णन में लेखक की सौन्दर्य-दृष्टि सर्वत्र देखी जा सकती है। उदाहरणस्वरूप जहाज़ के कर्मचारियों की जल-क्रीड़ा यहाँ द्रष्टव्य है–

"पर आज जो देखा, सो सारा मुकम्मल था। दरारें कैन्वस से बन्द हो चुकी थीं और तालाब लबालब भर रहा था। नहाने वाले उसमें कूद-कूदकर तैर रहे थे।...अधिकतर इनमें कर्मचारी थे, जिनका खुला शरीर देखते ही बनता था। उनके शरीर पर पौरुष खेलता था। सुडौल शक्ति-परिचायक जब एक-दूसरे पर रपट पड़ते थे तब लगता जैसे दो सांड टकरा रहे हों। देर तक उनका तैरना, आपस में खेलना, एक-दूसरे को वर्षित करना देखता रहा।"[38]

स्त्री-चरित्रों में नारी के तीन प्रमुख रूप डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में मुखर हुए हैं–

1. सौन्दर्य-युक्त नारी
2. उदात्त रूप में नारी

3. पतिता रूप में नारी

प्रथम दृष्टि से लेखक ने कुछ प्रमुख नारी चरित्रों का अंकन किया है। इन चरित्रांकनों में डॉ. उपाध्याय का सौन्दर्य-बोध प्रायः मांसल हो उठता है। नारी देह की संरचना में लेखक मानो एक कलाकार मूर्तिकार की दृष्टि रखता है। नारी देह के अवयवों के उतार-चढ़ाव तथा भंगिमाएँ जैसे स्वयं मुखरित होने लगती हैं। बोर्न होल्म में समुद्र स्नान में रत अपनी सहयात्री सुन्दरी मिसेज़ रिचर्ड की देह यष्टि का वर्णन करते हुए डॉ. उपाध्याय लिखते हैं—

"छरहरी, सलोनी, कोटिमत्त दाँतों वाली, पके कदम्ब फल के-से लाल होंठ वाली, दुबली कटि वाली, गहरी नाभि वाली, भरे नितम्बों के कारण अलसाकर धीरे-धीरे चलने वाली, स्तनों के भार से तनिक आगे को झुकी—गरज़ कि युवतियों के प्रसंग में जो कुछ भी सृष्टि में सुन्दर है, उसकी निचोड़-सी मेघदूत की नायिका।"[39]

उदात्त नारी चरित्रों में राहुल सांकृत्यायन की पत्नी लोला को देखा जा सकता है, जो अपने पुत्र इगोर के साथ रूस में राहुल की प्रतीक्षा करती है। सामूहिक रूप से चीनी नारी का औदात्य और उसकी संघर्ष चेतना डॉ. उपाध्याय ने इस प्रकार निरूपित की है कि चीनी नारी का एक अलग ही चरित्र उभरता है—

"नाटे कद की वह नारी, पीली जैसे, मानसरोवर के पीले कमल, गुलाब-से खिले उसके गाल, चाँद-सा गोल उसका चेहरा, पतली लम्बी-लम्बी बरौनियों से ढकी उसकी सफेद-नीली आँखें जिनकी नीलाभ गहराइयों में चीनी राष्ट्र का सारा उल्लास सोता-जागता है और उसके प्रशस्त मस्तक पर तिरछी किश्तीनुमा नीली टोपी के नीचे गर्दन तक कटे काले बाल, पुष्ट पहाड़-सी फैली छाती, बन्द कॉलर के कोट से पूरी ढकी हुई नीचे बगैर क्रीज़ की ऊँची पतलून और केनवस के जूते।"[40]

नारी हो अथवा पुरुष, दोनों ही प्रकार से चरित्र-चित्रण में लेखक ने यथार्थ जीवन की झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं। नारी के पतित रूप में प्रमुख रूप से उसके वेश्या-जीवन की घिनौनी गाथा की झलक मिलती है। नारी के इस पतित रूप का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करते समय डॉ. उपाध्याय अन्ततोगत्वा समाज के सामन्ती ढाँचे को ही इसका मूल कारण मानते हैं। नारी के इस निकृष्टतम रूप के अंकन में लेखक ने औपचारिक चरित्रांकन नहीं किया है, केवल उसकी झलक प्रस्तुत की है, उदाहरणार्थ—हांगकांग की वेश्याओं का विवरण देते हुए लेखक कहता है—

"पाप की साकार परिणति, वे अपने कोठों पर हांगकांग के वेश्यालयों, होटलों, सरायों, भट्टियों में अपना घृणित रोजगार चला रही हैं। जानने वालों का कहना है कि ढलती रात सड़क पर चलने वाले अगर सावधान न हों तो तवायफों का उन्हें उड़ा ले जाना कुछ अज़ब नहीं।"[41]

लेखक ने जिन चरित्रों को अपनी यात्रा में देखा-परखा है उनका अंकन तो

प्रत्यक्षतः किया ही है; कुछ ऐसे चरित्र भी हैं, जो यात्रा के दौरान लेखक की स्मृति में छाए रहे हैं। उन अप्रत्यक्ष पात्रों के निरूपण से जहाँ कुछ विशिष्ट व्यक्तियों की झलक मिलती है, वहीं लेखक के व्यक्तिगत परिवेश का भी परिचय मिलता है। 'कलकत्ता से पीकिंग' पुस्तक में जिन-जिन व्यक्तियों को लेखक ने पत्र लिखे हैं, उन सभी के व्यक्तित्व की गहरी-हल्की छाप यत्र-तत्र उन पत्रों में मिलती है। विशेषकर डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन', कविवर सुमित्रानन्दन पंत, यशपाल, नरेश मेहता, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' आदि साहित्यकारों के स्वभाव तथा व्यक्तिगत रुझानों का परिचय मिलता है। ये सभी चरित्र स्मृति में उभरे अप्रत्यक्ष चरित्र कहे जाएँगे। अप्रत्यक्ष चरित्रों के भी सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निरूपण न करके लेखक ने प्रसंगानुसार उसके किसी एक पक्ष को ही उजागर किया है। इस क्रिया में लेखक कोई पृथक् प्रयास नहीं करता; यथा—डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' के मांसाहार पर टिप्पणी करते हुए डॉ. उपाध्याय ने उन्हें लिखा—

"सुमन, तुम्हारी बहुत याद आई क्योंकि मैं जानता हूँ, तुम्हें गोश्त और मछली बहुत पसन्द है और यद्यपि तुम भी लकड़ियों के इस्तेमाल में वैसे ही अनाड़ी साबित होते, जैसा मैं हुआ, मुझे यक़ीन है कि हड्डियों को आदिम बर्बरता से तोड़ उनकी मज्जा चूसने में तुम कोई कसर न रखते। निश्चय तुम्हें हिंस्र जन्तुओं का सुख होता।"[42]

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में प्रकृति-चित्रण, नगर एवं ग्राम वर्णन तथा चरित्रांकन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि वह यथार्थ से अनुबंधित है, लेकिन उनके वर्णन-कौशल के कारण उसमें साहित्यिकता का समावेश हो गया है। उनका प्रकृति-चित्रण उनकी अपनी शैली में अनुपम एवं अद्‌भुत है। वस्तु-वर्णन में डॉ. उपाध्याय की दृष्टि पर्याप्त रमण करती है लेकिन यात्रा की गतिमयता किसी भी वस्तु को पूर्णता नहीं प्राप्त होने देती, सबमें एक गतिशीलता एवं एक प्रकार से अधूरापन दृष्टिगोचर होता है। उनके पूरे यात्रा-साहित्य को यदि एक फलक पर देखा जाय, तब वे सभी वर्णन परस्पर सम्बद्ध दिखाई देते हैं, और एक तारतम्य से युक्त सृष्टि का सर्जन करते हैं।

सन्दर्भ

1. हिन्दी साहित्य-कोश; सं.—डॉ. धीरेन्द्र वर्मा; पृ. 870
2. आधुनिक हिन्दी का जीवनी-परक साहित्य; डॉ. शान्ति खन्ना; पृ. 264
3. हिन्दी साहित्य-कोश; कैसेल; पृ. 608
4. आलोचना; जुलाई, 1964, पृ. 11-12
5. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त (द्वितीय भाग); डॉ. गोविन्द त्रिगुणयत; पृ. 510
6. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 90-91
7. तदेव; पृ. 145

8. सागर की लहरों पर; पृ. 43
9. यात्रा-साहित्य का उद्‌भव और विकास; डॉ. सुरेन्द्र माथुर; पृ. 240
10. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 145
11. नवभारत टाइम्स; 15 अगस्त, 1982
12. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 132
13. घूमने का राज; पृ. 137
14. सागर की लहरों पर; पृ. 14-15
15. आखिरी चट्टान तक; मोहन राकेश; पृ. 148-49
16. घूमने का राज; पृ. 125
17. सागर की लहरों पर; पृ. 15
18. घूमने का राज; पृ. 138
19. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 11
20. वही; पृ. 2
21. घूमने का राज; पृ. 9-10
22. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 51
23. वही; पृ. 145
24. वही; पृ. 2
25. वही; पृ. 146
26. घूमने का राज; पृ. 140
27. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 163-64
28. वही; पृ. 164
29. वही; पृ. 165
30. आखिरी चट्टान तक; भूमिका
31. छायावादोत्तर हिन्दी गद्य-साहित्य; डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी; पृ. 294
32. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 89
33. वही; पृ. 97
34. वही; पृ. 4
35. घूमने का राज; पृ. 35
36. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 24
37. घूमने का राज; पृ. 77
38. सागर की लहरों पर; पृ. 26
39. घूमने का रहस्य; पृ. 136-37
40. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 147
41. वही; पृ. 12
42. वही; पृ. 37

3

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में पुरातात्त्विक, ऐतिहासिक एवं भौगोलिक परिवेश

यात्रा-साहित्य में भूगोल और इतिहास दोनों ही मुखर होते रहते हैं। पण्डित गोपालप्रसाद व्यास का मत है कि यात्रा-साहित्य के लेखक के लिए पहली शर्त यह है कि वह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धान्त को हृदय से अंगीकार करे। विना इसके भूगोल और इतिहास में पैठ नहीं हो सकती। भूगोल और इतिहास, इन दो चरणों पर ही यात्रा-देह टिकी हुई है। जैसे कवि किसी फूल को, किसी पक्षी को, प्रकृति के किसी दृश्य को देखकर कल्पनाशील हो उठता है, वैसे ही यात्रा-साहित्य के लेखक का मन भी वर्तमान में रहता हुआ भी अतीत से लेकर भविष्य तक उड़ान भरता रहता है।[1] लेखक के अपने यात्रा-साहित्य में वर्तमान का निरूपण भौगोलिक परिवेश को मुखर करता है और अतीत का अध्ययन पुरातात्त्विक तथा ऐतिहासिक परिवेश को।

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के यात्रा-साहित्य का अध्ययन एक प्रकार से त्रिकोणात्मक है। उसमें वर्तमान तो भौगोलिक परिवेश का प्रतिनिधित्व करता है, लेकिन अतीत का परिवेश क्रमशः पुरातात्त्विक एवं ऐतिहासिक–दो भागों में विभाजित हो जाता है। डॉ. उपाध्याय की यह विशेषता है कि वे अतीत और वर्तमान को एक ही रेखा पर व्याख्यात करते हैं। वे यह मानते हैं कि अतीत, वर्तमान और भविष्य, काल की एक ही अविरल धारा है–

"अतीत वर्तमान से जुड़ा हुआ है, वर्तमान में ही पल्लवित है, जैसे वर्तमान भविष्य के साथ जुड़ा हुआ है, भविष्य में ही पल्लवित होने वाला है और इस प्रकार जब अतीत वर्तमान की राह मंजिलें तय करता है, तब लगता है–जैसे भविष्य अतीत हो, अतीत ही फिर से जनम रहा हो या कि भविष्य सुदूर अतीत में ही अजन्मा पड़ा रहा था, जो ज़माने वाद फिर साँस लेने लगा हो, सो अतीत, वर्तमान और भविष्य, काल की एक ही अविरल धारा है, अटूट अनन्त प्रवाह है।"[2]

पुरातत्त्व और इतिहास डॉ. उपाध्याय के मूल अध्ययन के क्षेत्र रहे हैं, उनका

जीवन ही पुराकाल की अजानी वीथियों में विचरते हुए बीता और उनके भ्रमण की मूल प्रेरणा भी पुरातत्त्व और इतिहास ही रहा। 'पुरातत्त्व का रोमांस' पुस्तक की भूमिका में वे स्वीकारते हैं–"पुरातत्त्व के इन स्थलों को निकट से देखने का सौभाग्य मिला। इनमें से कुछ ही खुदाइयों में शामिल होने का भी। कुछ स्थलों पर तो मैं महीनों तम्बुओं में रुका रहा था।"[3] पुरातात्त्विक, ऐतिहासिक और भौगोलिक तीनों ही प्रकार के परिवेशों के प्रतिफलन अनुशीलन यहाँ प्रस्तुत है, जो डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है–

पुरातात्त्विक परिवेश

पुरातत्त्व में अतीत के उस खण्ड का अध्ययन किया जाता है, जिसके काल निर्णय में इतिहासकार मौन हो जाता है, जिसके जीवन, साहित्य, संस्कृति, समाज की अवस्थाओं का कोई स्पष्ट रूप हमारे सम्मुख प्रकट नहीं हो पाता। डॉ. भगवतशरण उपाध्याय विश्व-स्तर के पुराविद् रहे हैं और धरती की कोख में छिपे हुए अतीत को उभार-उभारकर देखने की उत्कट लालसा तथा उस काल से सम्बन्धित साहित्य-सर्जन की विलक्षण प्रतिभा उन्हें प्राप्त है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन की 'वोल्गा से गंगा' और डॉ. रांगेय राघव के पुरातात्त्विक साहित्य की प्रेरणा के रूप में डॉ. उपाध्याय की 'सवेरा' पुस्तक की कहानियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।[4] डॉ. उपाध्याय की पुरातत्त्व से सम्बन्धित पुस्तकें 'सवेरा, संघर्ष, गर्जन' 'पुरातत्त्व का रोमांस' और 'बुर्जियों के पीछे' उनके पुराकालीन अध्ययन की प्रमाण हैं।

पुरातात्त्विक परिवेश का निरूपण उनके यात्रा-साहितय में स्पष्टतः तो कम हुआ है। यत्र-तत्र उन्होंने उसकी ओर संकेत अवश्य दिए हैं। चीन में पीकिंग की पहाड़ियों का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं–"पहाड़ियों में सदियों का ऐश्वर्य भरा पड़ा है उसमें सब कुछ है जो चीन का वैभव और कला दे सकती है। ध्वजा-चित्रण, पोर्स्लेन और वैदूर्य के अन्ततः वर्तन हाथी दाँत और कीमती-पत्थर जड़े काम।"[5]

समरकन्द के विशाल गुम्बज के पुरातात्त्विक परिवेश का वर्णन करते हुए डॉ. उपाध्याय लिखते हैं–

"हिन्दुकुश की ढालों पर यह राह भी सिन्धुनद की घाटी में चित्राल की दिशा से आई राह से जा मिलती है। और वहाँ खड़ा होकर इंसान, कम-से-कम सिरकप के टीलों पर खड़ा होकर अपने आपको भूल जाता है, काल को भूल जाता है। जमाने का दौर तव जैसे ठमक जाता है और निगाह सदियों की परतें भेदती वह देखने लगती है, जिसे दिखाना सदियों को मंजूर नहीं।"[6]

पुरातात्त्विक दृष्टि से डॉ. उपाध्याय ने मिस्र के पिरिमिडों का और तत्कालीन परिवेश का चित्रण करने में विशेष सफलता प्राप्त की है। उस अजाने युग में मानव

ने जिस प्रकार मानव का शोषण किया था, किस प्रकार मृत्यु की स्मृति को स्थायी बनाने के लिए जीवन को—दरिद्रता की गोद में दम तोड़ते जीवन को, स्नेह-सिंचित परन्तु दुःखों में हँसते-खेलते जीवन को मृत्यु के मुँह में झोंक दिया जाता था, यह दर्शाने के लिए लेखक ने पुरातात्त्विक परिवेश पर आधृत ऐसी कहानियाँ रची हैं, ऐसे रेखाचित्र प्रस्तुत किए हैं, कि पाठक उन्हें पढ़कर दाँतों तले उँगली दबा लेता है और सबसे ऊपर उठ जाता है लेखक का मानववादी दृष्टिकोण, जो अन्याय और शोषण का कट्टर विरोधी है; वह अन्याय और शोषण चाहे किसी भी कालखण्ड में क्यों न होता रहा हो। गीज़ा के पिरामिडों के विषय में लेखक का कथन है—"गीज़ा के पिरामिडों की छाया में संसार की अनजानी समृद्धि एकत्र हुई और जिन विशाल भवनों ने उनको अपनी काया में सुरक्षित किया, उनके निर्माण में लाखों बलि हो गए। बाज़ुओं पर तौलकर लाखों ने चट्टानें सैकड़ों फीट आसमान में पहुँचाई और उन चट्टानों की चोट से स्वयं उनके कण-कण बिखर गए। ये मज़दूर दजला-फरात की घाटियों से आए थे, फिलिस्तीन से, साहनाई से, ख्रीट और मिकीनी से, मोरक्को और एबीसीनिया से।"[7]

फेरो ने पूछा—"काम में शिथिलता क्यों हो रही है, पिरामिडों की ऊँचाई जल्द क्यों नहीं उठ रही है ?" उत्तर मिला—"गुलामों के परिवार हैं और उन परिवारों की उन्हें चिन्ता है, उनका मन बँटा हुआ है।" फेरो ने हुक्म दिया—"गुलामों को उनके परिवारों से हटा दो, वे अपने घर न लौटें।" कुछ दिन बाद फेरो ने फिर पूछा—"काम में शिथिलता क्यों हो रही है ?" तब गुलामों के परिवार के बच्चों को शिथिलता का कारण बताया गया इस पर फेरो ने हुक्म दिया—

"उन बच्चों को नील नदी में डुबो दो।"

अभागे गुलामों के एक लाख बच्चे नील नदी में डुबो दिए गए। पिरामिड उठ चले और मृत्यु की नींव पर मरण का जीवन सुरक्षित करने खड़े हुए—विशाल, भयकारक।"[8]

मिस्र के पिरामिडों में तूतनखामन की कब्र का अपना जादू रहा है। 'पुरातत्त्व का रोमांस' पुस्तक में डॉ. भगवतशरण उपाध्याय ने इस विस्मयकारी कब्र की खुदाई का मार्मिक वर्णन किया है—

"धीरे-धीरे किवाड़ खुल गए और तब जैसे समूची समाधि को घेरे पत्थर का भारी ताबूत दिखाई पड़ा, अछूता, समूचा, जैसा पुरोहितों के पवित्र हाथों ने तीन हज़ार वर्ष पूर्व उसे रख दिया था। क्या दृश्य था ! चतुर्दिक् स्वर्ण-दीवारों की आभा ताबूत पर बरस रही थी, ताबूत के निचले भाग पर उसकी अनधिकारी हाथों से रक्षा करती-सी भुजाएँ और पंख फैलाए देवी की आकृति खुदी थी।"[9]

तूतनखामन की मृत्यु के बाद भी अमर हो जाने की इच्छा उसके पिरामिड के निर्माण का कारण बनी। लुक्सर का पिरामिड स्वर्ण-राशियों से भर दिया गया।

उस ताबूत का वर्णन करते हुए डॉ. उपाध्याय अपने यात्रा-साहित्य में लिखते हैं–

"सोने की दीवार, सोने का परकोटा, सोने का ताबूत, सोने का कवच, सोने का चेहरा और उसके भीतर मिट्टी का पुतला, जिसमें न तो उस सोने का भार वहन करने का बल था, न उसका मूल्य आँकने की मेधा थी। दजला और फरात की अन्न उगलने वाली घाटी ने, एशिया माइनर की स्थान-स्थान की उर्वर भूमि में, दक्षिण-उत्तर की मिस्र की ज़मीन ने अपने अध्यवसाय, निरन्तर श्रम के पसीने और लहू से वह सोना उगला था, जिसका उपयोग जीवन के लिए मुनासिब न समझा गया, मृत्यु के लिए अनिवार्य !"[10]

लेखक अपने यात्रा-साहित्य में भी जब अतीत की अजानी घाटियों की यात्रा पर निकलता है, तो मानों एक मोहक काव्य की रचना करता है। अतीत के परिवेश के कलात्मक वर्णन की प्रामाणिकता किसी विरले पुराविद् एवं इतिहासकार को ही प्राप्त हो सकती है। क्लियोपेत्रा के नाक के सौन्दर्य के कारण अनेक युद्ध हुए। रोमन जनरल एन्तोनी, पाम्पेई, जूलियस सीज़र, एग्रिप्पा और ओक्टेवियस जाने कितने पतंग बनकर क्लियोपेत्रा, के ज़ादू पर मरते-जलते रहे। लेखक के शब्दों में–"वही क्लियोपेत्रा, जो अनेक राजदूतों के साथ अपनी विविध भाषाओं में एक साथ परामर्श करती थी, जो भारत से जाने वाले गर्म मसालों और मोतियों से भरे जहाज़ों को खड़े खरीद लेती थी, जो मिस्र की भेद भरी रानी थी और जिसने रोम के शासकों के विजय प्रदर्शनों में जीत की वस्तु बनने से नाग के चुम्बन से मर जाना बेहतर समझा, इन पिरामिडों की छाया में अपनी स्मृति छोड़ गई।"[11]

पाशाओं के देश मिस्र के पिरामिड पुरातत्त्व की दृष्टि से अत्यन्त आकर्षक है ओर पुरातत्त्व डॉ. भगवतशरण उपाध्याय का बहुत बड़ा आकर्षण, इसीलिए वे मिस्र के पिरामिडों की रोमांचकता पर विस्मय विमुग्ध होकर लिखते हैं–

"मिस्र का अपना एक जादू है, जिसकी नीलिमा, भूमध्य सागर की नीलिमा से अधिक गहरी है, ऊपर छाये आकाश की नीलिमा से कहीं अधिक गहरी, कहीं अधिक आकर्षक।"[12]

पुरातात्त्विक परिवेश का अंकन करते समय डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में जहाँ शोषण की प्रक्रिया और मानव द्वारा मानव पर किए गए अत्याचारों का उल्लेख होता है, वहीं सभ्यता के विकास के साथ-साथ मानवीय विकास की रूपरेखा भी प्रस्तुत कर दी जाती है। मिस्र के किसान की प्रगति का तत्कालीन लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए डॉ. उपाध्याय लिखते हैं–

जब प्रागैतिहासकाल का मनुष्य अन्यत्र अपने चौबीस घण्टों में से अट्ठारह घण्टे आहार की खोज में बिताता था, अब मिस्र का वह किसान आहार सुगमता और आवश्यकता से अधिक मिल जाने के कारण अवकाश का जीवन बिताने लगा। अवकाश का जीवन पेट भरा होने पर सोचने-गुनने की आदत डालता है। मिस्री

किसान भी सोचने-गुनने लगा।''[13]

पुरातात्त्विक परिवेश लेखक को आकर्षित करता है, ऐसे वर्णनों से लेखक के ज्ञान का आलोक पाठक को भी लाभान्वित करता है। लेखक की जिज्ञासा, कुतूहल, लगनशीलता और मानवीय दृष्टि आदि प्रवृत्तियाँ उसके पुरातात्त्विक परिवेश के अंकन में मुखर होती चलती हैं।

ऐतिहासिक परिवेश

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में दो प्रवृत्तियों का प्राधान्य रहा है—1. ऐतिहासक परिवेश का अंकन और 2. मानवतावादी दृष्टिकोण, जिसके कारण अतीत के गर्त में छिपी शोषण की प्रक्रियाओं, प्रवृत्तियों, प्रकारों और उसके दुष्परिणामों का विवरण प्राप्त होता है। लेखक की इतिहास-दृष्टि उसकी सबसे बड़ी विशेषता है, किसी भी महत्त्वपूर्ण वस्तु का अवलोकन करके लेखक उसके अतीत की यात्राओं में खो जाता है। यात्रा-साहित्य में डॉ. उपाध्याय ने क्रमबद्ध ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत नहीं किए हैं। इतिहास-बोध के आधिक्य के कारण उनकी प्रारम्भिक यात्रा-पुस्तकें कुछ बोझिल भी हो गई हैं। 'मैंने देखा' में रेखाचित्र शैली में इतिहास ही प्रमुख हो गया है। 'लाल चीन- ऐतिहासिक यात्रा-वर्णन कहा जा सकता है। सच बात तो यह है कि डॉ. उपाध्याय ने विश्व-साहित्य, संस्कृति, कला, इतिहास से सम्बन्धित जो भी लिखा है, उसके पीछे प्रेरणा के रूप में दो ही चीज़ें काम करती रही हैं—एक तो घुमक्कड़ स्वभाव और दूसरा लेखक का इतिहास-बोध। इन दोनों प्रवृत्तियों के प्रभावस्वरूप उनके लेखन में प्रमाणिकता के साथ-साथ रोचकता उत्पन्न हो गई है।

अतीत को वर्तमान से जोड़ने का उपक्रम तभी सार्थक हुआ है जब लेखक ने वर्तमान के यथार्थ पर पाँव रखकर अतीत के गुह्य लोकों का प्रस्तुतीकरण किया है।

डॉ. उपाध्याय की वे कृतियाँ भी जो यात्रा-साहित्य की विधा में परिगणित नहीं की जातीं, यात्रा के तत्त्वों से भरपूर है। यात्रा के कारण लेखक की दृष्टि अधिक व्यापक तथा वस्तुपरक हो गई है। ऐतिहासिक परिवेश से बोझिल होते हुए तथा रेखाचित्र शैली में वर्णित होते हुए भी डॉ. उपाध्याय के ऐतिहासिक वर्णन वस्तुतः यात्रा-वर्णन ही हैं। 'बुर्जियों के पीछे' में ऐतिहासिक स्थलों का कलात्मक निखार तो व्याख्यात हुआ ही है, उनका ऐतिहासिक परिवेश भी बड़ी ही रोचक शैली में प्रस्तुत किया गया है। ताजमहल के विषय में लेखक का कथन है—

''इतिहास का विद्यार्थी देख रहा है, बुर्जियों के पीछे, जमुना के किनारे उठती हुई ताज की इमारत को और सुन रहा है—संगतराशों की खट-खट, छेनी की चोट और दूर-पास से आती हुई एक कराह जो संगतराशों की खट-खट, छेनी की चोट

पर छा जाती है, उनमें घुल-मिल जाती है।

वह देख रहा है, उस आलम को जो शाहजहाँ का स्वप्न सच्चा कर रहा है, जिसमें हिन्दुस्तान के कलावन्त, फारस के रंग-साज़, अरब के संगतराश, आरमेनिया के पच्चीकार, कुस्तुन्तुनिया के गुम्बजकार, वेनिस के सुनार लगे हैं।...ताज की नींव पड़ गई है, उसका आकार उठ चला है।''[14]

डॉ. उपाध्याय ने अपनी चीन-यात्रा के दौरान चीन के ऐतिहासिक परिवेश को उजागर करने में अत्यन्त रुचि दिखाई है। चीन का सन् 1950 के आस-पास का वर्तमान और माओ सरकार की अभूतपूर्व प्रगति और उससे पूर्व के चीन का घृणित रूप सभी कुछ डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में मुखर हुआ है। पीकिंग के अतीत और वर्तमान पर एक साथ दृष्टिपात करते हुए वे लिखते हैं–

''पीकिंग ऐतिहासिक अतीत का महान् प्रतीक है। सुंगों का, हानों का, मंचुओं का, मिंगों का, गरज कि उन सबका जिन्होंने चीन की क्वाँरी जमीन जोती है और पीकिंग की धरा को रक्त और प्यार से सींचा है। संघाई देश के दुश्मनों का इधर सालों क्रीडास्थल रहा है जिन्होंने अमरीका और यूरोप के व्यस्त जीवन से ऊबकर बार-बार शरण ली है और बार-बार उसकी ज़मीन को बेपर्दा किया है, उसकी गंगा सरीखी पवित्र बहू-बेटियों की लाज लूटी है।''[15]

चीनी-नवजागरण से पूर्व चीन की स्थिति क्या थी, उसका अमरीकियों एवं अंग्रेजों के द्वारा कैसे शेषण किया गया और वहाँ के नैतिक तथा चारित्रिक पतन के पीछे विदेशियों का कितना हाथ रहा, इसका ब्यौरा प्रस्तुत करते हुए डॉ. उपाध्याय लिखते हैं–

''चीन इस नवजागरण में अग्रणी है–चीन, जो उन्नीसवीं सदी में अंग्रेजों और अमरीकनों दोनों का शिकार था। सन् 1840 के बाद बढ़ते हुए अंग्रेजी साम्राज्य के निर्माण में जो लड़ाइयाँ चीन की जमीन को रक्त से रंगने के लिए लड़ी गई थीं, उनका आधार हिन्दुस्तान था। हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने चीन में अंग्रेज सैनिकों के जुर्म का जो आँखों देखा ब्यौरा दिया है, वह रोंगटे खड़े कर देने वाला है। उनमें से एक बयान तो यह है कि टामियों (अंग्रेज सैनिकों) का जुल्म इतना भयानक हो उठा था कि उनकी शक्ल से चीनी औरतें घबराने लगीं और अनेक बार तो उनके हाथों में पड़ने से उन्होंने कुएँ में कूद जाना बेहतर समझा।''[16]

चीन के वर्तमान जीवन से उसके अतीत की तुलना करते हुए लेखक ने यह दर्शाया है कि चीन ने किस प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्त की, विदेशियों के चंगुल से किस प्रकार अपनी धरती को स्वतंत्र कराया। माओ सरकार की प्रशंसा करते हुए लेखक ने उसके अतीत के संघर्ष और चीनी स्वतन्त्रता के लिए देशवासियों द्वारा चुकाए हुए मूल्य की बार-बार चर्चा की है–

''देश का अर्थ चीन ने भयाकन स्थिति में पाया था। खेत सूखे थे, या बढ़े

जल में डूबे या जिस पर वह देशी दैत्य काबिज़ था, जो कलाबत्तू का चोगा, रेशमी पाजामा पहिने, रेशमी गद्दों पर अफीम का हुक्का गुड़गुड़ाता, पिनक में आधा सोता, आधा जागता रहता था। आज वह ज़मीन चीन के सही निवासियों ने उन खूनी पंजों से छीन ली है, जिसमें न केवल गेंद रूपी भूमि थी, वरना जिसके नाखूनों में उसकी अंतड़ियाँ भी लिपटी थीं।''[17]

चीन से सम्बन्धित ऐतिहासिक विवरणों को लेखक ने जहाँ क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत किया है, वहीं वह अन्य यात्रा-वर्णनों का संकेत मात्र देकर आगे चल देता है। अन्य वर्णनों में भी क्रमबद्धता बनी रही है, लेकिन यह क्रमबद्धता यात्रा के क्रम से जुड़ी रहती है और उसमें एक प्रकार की गति के दर्शन होते हैं। अमरीका पहुँचते ही लेखक अमरीकी अतीत पर जैसे एक विहंगम दृष्टिपात करते हुए कहता है–

''अमरीका की भूमि कभी आज़ादी की भूमि थी। पहले-पहल इस आधुनिक युग में इसी देश ने मानव-स्वतन्त्रता के अधिकरों की आवाज़ उठाई थी; फ्रांस की राज्य-क्रान्ति से भी पहले। आज़ादी के स्मारक स्वरूप सामने बाहर समुद्र में वह 'स्वतन्त्रता की मूर्ति' खड़ी है, विशाल, गगन-चुम्बी।''[18]

ऐतिहासिक परिवेश का अंकन करते समय लेखक तुलनात्मक दृष्टि का भी सहारा लेता है। इंग्लैण्ड की अठारहवीं सदी के समाज के घिनौनेपन की तुलना करते हुए वह दण्डी के 'दशकुमार चरित' में वर्णित भारतीय समाज का उल्लेख करता है–

''इंग्लैण्ड का अठारहवीं सदी का सामाजिक जीवन अत्यन्त घिनौना था, जिससे कोई बचा न था, न राजा, न रंक, न साधु, न असाधु। चार्ल्स (द्वितीय) ने जिस सामाजिक घिनौनेपन का आरम्भ अपनी बहिन हेनरी हनुएट्टा के साथ उसके शासन-काल में किया था, उसका चरम रूप इसी अठारहवीं सदी में इंग्लैण्ड की भूमि पर आ उतरा। उसकी कुछ तुलना दण्डी के 'दशकुमारचरित' में वर्णित तात्कालिक घृणित भारतीय समाज से की जा सकती है।''[19]

ऐतिहासिक परिवेश के प्रस्तुतीकरण के मुख्य दो रूप हो सकते हैं–एक सूचनात्मक तथा दूसरा भावात्मक। डॉ. उपाध्याय ने दोनों ही रूपों में इतिहास को पुनर्मूल्यांकित किया है। इतिहास को प्रस्तुत करने की परम्परागत शैली सूचनात्मक ही है, जिसमें तिथियों का उल्लेख और घटनाओं का निरूपण किया जाता है। डॉ. उपाध्याय ने अपने यात्रा-साहित्य में एक साथ अनेक सूचनाएँ प्रस्तुत करने की इस शैली को कम अपनाया है। ऐसे वर्णनों में युद्धों का निरूपण होता है। राज्यों के उत्थान-पतन की कहानी होती है, साथ ही होता है–तत्कालीन सामाजिक परिवेश का प्रस्तुतीकरण। यहाँ दो-एक ऐसे उद्धरण उल्लेखनीय है–जिब्राल्टर के इतिहास के एक पक्ष का प्रस्तुतीकरण करते हुए डॉ. उपाध्याय लिखते हैं–

''जिब्राल्टर के इतिहास का दूसरा देदीप्यमान काल आठवीं सदी के आरम्भ

में आया जब पैगम्बर मुहम्मद के अनुयायियों ने अरबी रेगिस्तान से निकलकर दुनिया को हैरत में डाल दिया। मोहम्मद के मरते ही अरबी रिसालों ने पुराने गढ़ तोड़ डाले। बाइज़ेन्तियम की रामेन सेना या रमुक (जार्डन की सहायक नदी) की लड़ाई में 634 ईसवी में अरबों से टकराकर टूट गई और रोमन सम्राट् हेरेक्लियस के देखते-ही-देखते उसकी विजयों के आधार–सीरिया, दमिश्क, पामाइरा, अन्तिओक, जुरूसलम–अरबों के अधिकार में आ गए।"[20]

स्टाकहोल्म के इतिहास का वर्णन करते हुए डॉ. उपाध्याय ने भारत के नगर पटना से उसकी तुलना ही है–

"स्टाकहोल्म नगर मालार झील ओर आल्टिक सागर की सन्धि पर आज से प्रायः 700 वर्ष पूर्व खड़ा हुआ था। अपने आरम्भिक दुर्गाकार से बढ़ता हुआ यह द्वीपों और स्वीडन के भू-भाग पर छाता चला गया।...इसके पीछे इसका शालीन इतिहास है–इस नगर के आरम्भ का जब यह समुद्री डाकुओं से रक्षा के लिए धीरे-धीरे खड़ा हुआ था, जैसे पटने का पाटलि दुर्ग रक्षा दुर्ग से बढ़कर मगध की राजधानी हो गया। स्टाकहोल्म ने भी स्वीडन की कालान्तर में राज-रज्जु सम्हाली, जो आज नार्वे और डेनमार्क की ही भाँति सोशलिस्ट लेबर दल के हाथ में है।"[21]

ऐतिहासिक परिवेश का भावात्मक निरूपण ही डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में भी मुख्य रूप से देखने को मिलता है। भावात्मक निरूपण से मेरा तात्पर्य उसके साहित्यिक रूप से है। इतिहास जहाँ मात्र तिथियों और घटनाओं में बँधकर नहीं रह जाता है, जहाँ मात्र सूचनाएँ ही नहीं मिलती हैं, अपितु उनके तथ्यांकन के पीछे मानव-हृदय की अन्तर्निहित संवेदनशीलता भी मुखर होने लगती है, तब इतिहास अधिक रोचक एवं संवेद्य हो जाता है। भावात्मक ऐतिहासिक निरूपण में एक ही भय बना रहता है कि कहीं भावों के अधिक ऊपर हो जाने के कारण घटनाओं की प्रामाणिकता न नष्ट हो जाय। डॉ. उपाध्याय ने अपने यात्रा-साहित्य में तथ्यों की प्रामाणिकता से सम्बन्धित मर्यादा को निभाते हुए भी उसे साहित्यिक ऊर्जा से भर दिया है। उनका इतिहास-वर्णन मात्र इतिहास नहीं है, अपितु ऐतिहासिक साहित्य के रूप में प्रतिष्ठित है। उसकी विधाएँ विविध हैं। उनके निबन्ध, उपन्यास, कहानी, रेखाचित्र, पत्र अथवा यात्रा-साहित्य आदि सभी विधाओं में इतिहास सम्बन्धी संवेदनात्मक पक्ष ही अधिक मुखर हुआ है। यही वह विशेषता है, जो डॉ. उपाध्याय को शेप इतिहासकारों से भिन्न एक ऊँचे आसन पर बैठा देती है। इसी कारण उनके ऐतिहासिक विवरणों में काव्यानन्द प्राप्त होता है। ताजमहल का वर्णन करते हुए लेखक प्रारम्भ ही इतने काव्यात्मक ढंग से करता है कि वर्णन की व्यंजनाएँ पाठक को बाँधने लगती है–इतिहास काव्य बन जाता है–

"आहिस्ता बोलो ! आहिस्ता ! भारत की दो विभूतियाँ सोई हुई हैं। उनको सोये आज तीन सदियाँ हो गईं। तीन सदियों से लगातार सुगन्धित द्रव्यों का धुँआ

उठता और उस सफेद चँदोवे से टकरा-टकराकर लौटता रहा है, उन उच्छ्वासों के साथ, जो वहाँ की हवा से घुले-मिले हैं, जिन्हें किसी ने कभी न देखा, न तब, न अब। आहिस्ता बोलो !''[22]

जहाँ लेखक सूचनाओं और घटनाओं पर अधिक बल नहीं देता, वहाँ वह छोटी-छोटी वस्तुओं अथवा घटनाओं के भीतर किसी-न-किसी भावुकता की तलाश करता है। वर्तमान से अतीत की यात्रा चलचित्र की भाँति मानस-पटल पर उतरने लगती है। फलोरेंस के अतीत का विहंगावलोकन करते हुए लेखक कहता है–

''फलोरेंस में वर्तमान नहीं है। उसके वर्तमान पर अतीत की भरपूर छाया है।..यह पुल है जहाँ किशोर कवि दान्ते ने अपनी बिएत्रिस का नित्य इन्तज़ार किया था, यह गोशा है जहाँ से पेत्रार्क ने जिन्दों-मुर्दों को प्यार और दुश्मनी के खत लिखे थे, यह वह बाग है, जिसके नंगे आदम और हव्वा के जोड़ों ने बोकाच्चो को अपने 'देकामेरान' के कामुक प्लाट दिए थे, यह सीनेट का वह ऐतिहासिक स्थल है, जहाँ 'ल्योनार्दो द बिंची' का किशोर प्यार के लिए दण्ड-विधान हुआ था...।...यह वह सड़क है, जिस पर नित्य माइकेलएँजेलो घुड़सवारी करता था, टहलता था। मृत्यु के कुछ घण्टों पहले जिस पर टहल आने की उसने कोशिश की थी।''[23]

इस प्रकार के वर्णनों से लेखक का ज्ञान-विस्तार तो उजागर होता ही है, उसके समाहार में प्रस्तुति-कौशल की बानगी भी मिलती है। कालिदास साहित्य में वर्णित इतिहास को तथा कालिदास-कालीन भारतीय समाज को विविध दृष्टियों से चित्रित करने का पुण्य-कार्य डॉ. उपाध्याय ने किया है। 'कालिदास' उपन्यास में लेखक की यह दृष्टि विस्तृत फलक पर उतरी है।

विदेश यात्राओं के समय डॉ. उपाध्याय भारतीय इतिहास और उसके गौरवशाली कालखण्डो को मानों मुट्ठी में दबाकर चलते हैं। भारतीय इतिहास के माध्यम से वे प्रायः भारत के जीवनादर्शों, जीवन-मूल्यों एवं विशिष्टताओं का भी उल्लेख करते चलते हैं; यथा–

''इतिहास की बात आपको याद होगी कि अनेक बार शान्ति के कायल होते हुए भी हमने अपनी आज़ादी की रक्षा के लिए इंच-इंच पर हमलावर की राह रोकी है। चप्पे-चप्पे ज़मीन पर कठों, मालवों, किबियों ने फसल काटने का हँसिया फेंक तलवार से कभी सिकन्दर की राह रोकी थी।''[24]

यूगोस्लाविया की जनता के सम्मुख लेखक ने भारतीय इतिहास के एक प्रसंग के माध्यम से यह स्पष्ट कर दिया कि भारतीय जन विश्वमानवता, प्रेम और अहिंसा जैसे उदात्त विचारों में विश्वास रखते हैं–

''आपके देश से ही, मकदूनिया से एक जन दिग्विजय करने चला और अपनी दिग्विजय के सिलसिले में उसने अनेक देश जीते, ग्रीस, सीरिया, मिस्र, ईरान, हमारे देश के पंजाब और सिन्ध भी जीते। उसके एक हाथ में तलवार थी और दूसरे में

आग। उसका नाम सिकन्दर था। दो पीढ़ी बाद हमारे एक शालीन सम्राट् ने उसका बदला चुकाया। उसने पाँचों ग्रीक देशों में, आपकी मकदूनियाँ में दवाएँ बँटवाईं। उसका नाम अशोक था। वास्तव में महान् था वह।''[25]

डॉ. उपाध्याय की इतिहास-दृष्टि बहुत व्यापक रही है। उनके विस्तृत अध्ययन और अनवरत भ्रमण ने उनके इतिहास-बोध को प्रामाणिकता और भावुकता प्रदान की है। उनके विशिष्ट शैली-शिल्प ने उसे ग्राह्य रोचक एवं काव्यात्मक बनाया है। 'लाल चीन', 'विश्व यात्री' और 'वो दुनिया' में डॉ. उपाध्याय ने ऐतिहासकि परिवेश को अधिक मुखर कर दिया है। परवर्ती यात्रा-साहित्य में उनका समाजशास्त्रीय एवं राजनीतिक रूप अधिक मुखर हुआ है। सबसे अधिक प्रेय तो उनका वह ऐतिहासिक परिवेश लगता है, जो यात्रा में चलते-चलते मुखर हो उठता है और लेखक को फिर आगामी यात्रा के लिए मुक्त कर देता है। यह क्षण बँधना और क्षण खुलना डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य की विशिष्टता है। ऐतिहासिक विवरणों की बोझिलता से कभी-कभी लगता है कि यात्रा की गतिशीलता को बाधा पहुँचती है, किन्तु जब संकेतों के द्वारा ऐतिहासिक परिवेश मुखरित हो और यात्री अकस्मात् इतिहास की पकड़ से मुक्त हो जाय तब लगता है, यात्रा-साहित्य की सर्जनात्मक ऊर्जा भी शेष है। यह पकड़ और इतिहास बोध से मुक्ति दोनों ही डॉ. उपाध्याय के यात्रा-वर्णनों में मिलती है। एक उद्धरण द्रष्टव्य है—डेनमार्क में एमालिऐन बोर्ग के स्क्वेयर को देखते ही लेखक की ऐतिहासिक प्रतिक्रिया इस प्रकार व्यक्त होती है—''इसी स्क्वेयर के चतुर्दिक् महलों में डेनमार्क के राजा-रानी रहते हैं। इसी में तब राजा क्रिश्चियन दसवाँ था, जब हिटलरी सेनाओं ने इसे घेर लिया था, पर तब सब कुछ हारकर भी वे चुप हो रहे थे। राजा-रानी महल में कैद, गोलियों की तड़-तड़, गेस्टापो की धरपकड़, अन्धकार, ब्लैकआउट फिर जनरल मांटगोमरी का प्रवेश और नारसी फौलादी सिकंजे से कोपेन हागेन की मुक्ति।

और तभी मेरी ही बेंच पर, पास की दूसरी बेंचों पर भी कुछ डेन आ बैठे।''[26]

यही है लेखक की क्षण बन्धन, क्षण मुक्ति की अवस्था। इसे ही हम अतीत और वर्तमान की सह-यात्रा कह सकते हैं। यही इतिहास-बोध लेखक के यात्रा-साहित्य की चारुता है और इसी बोध की अतिशयता उसकी सीमा भी, जहाँ से यात्रा-साहित्य और इतिहास-लेखन में सहजता से विभेद किया जा सकता है। डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में अतीत का मोह अधिक है, किन्तु उससे यात्रा-साहित्य विधा की रचना-शैली में कोई ह्रास नहीं होता है। कहना चाहिए कि ऐतिहासिकता अनेकशः डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य का प्राण-तत्त्व बन जाती है।

भौगोलिक परिवेश

भौगोलिक परिवेश का अंकन डॉ. उपाध्याय ने कहीं भी सायास नहीं किया

है। उनका मन जितना इतिहास में रमा है, उतना भूगोल में नहीं, किन्तु जाने-अनजाने लेखक ने विभिन्न देशों, स्थानों की प्रकृति—नदी, पर्वत, खेत, समुद्र आदि का चित्रण किया है साथ ही विश्व के विविध भू-भागों की, विविध भौगोलिक परिस्थितियों का भी चित्रण किया है। अनायास ही विविध देशों की जलवायु, ऋतुएँ डॉ. उपाध्याय के यात्रा-वर्णन में सजीव हो उठी है, लेकिन कहीं भी ऐसा प्रतीत नहीं होता कि लेखक मन से भौगोलिक जानकारी पाठकों को देना चाहता हो। इतिहास-पुरातत्त्व-निरूपण में यदि भू-भागों का परिचय आ जाता है, तो वही भौगोलिक परिवेश माना जाएगा।

भूगोल के अध्ययन का विस्तार और अधिक बढ़ गया है। आज मानव-जीवन से भौगोलिक परिस्थितियों की अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता का अध्ययन भूगोल-विदों का लक्ष्य हो रहा है। इस दृष्टि से डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में भौगोलिक परिवेश का निरूपण अधिक समीचीन दिखाई देता है।

डॉ. उपाध्याय द्वारा वर्णित भौगोलिक परिवेश प्रतिक्रिया के रूप में अधिक व्यक्त हुआ है। कराकोरम और पामीरों के परिवेश का एक परिचय यहाँ द्रष्टव्य है—

''कराकोरम के दर्रे को खच्चर पार कर गिलगित की धारा के सहारे उधर उतर जाते थे—उधर चित्राल की तरफ पामीरों की बगली देते और अगर सिन्धुनद की धारा पकड़ें तो काबुल और कुर्रम की कगारें सीने पर बादामों, अखरोटों की झुरमुटें धरे कुछ ऐसी लगती हैं कि मुसाफिर रम रहे...और इसी राह में एक और राह दक्खिन की ओर से जा मिलती है पुराने इतिहास की तक्षशिला होती तख्तबाही के पहाड़ी महलों की ओर शहरे-बहलोल की ओर जिनके कलश कँगूरों की पण्डितों की कुदालों ने खोद निकाला था। हिन्दुकुश की ढालों पर यह राह भी चित्राल की दिशा से आई राह से जा मिलती है।''[27]

''हिमालय में जोरकुल झील है, जहाँ से पुराने अरबों के अनुसार एक ओर से सिन्धु निकलती थी, दूसरी ओर से गंगा, तीसरी ओर से आम्र, चौथी ओर से सीता। सीता उसे वहाँ वाले कहते हैं, बाहरी दुनिया के लिए उसका नाम है—यारकन्द।''[28]

डॉ. उपाध्याय ने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में एक पुस्तक लिखी है—'द सन राइज़ेज़ द ईस्ट ऑव वेस्ट' इस पुस्तक की पाण्डुलिपि श्री अरविन्द गुर्टू, नयी दिल्ली के पास सुरक्षित है। 'ईस्ट ऑव वेस्ट' की ध्वन्यात्मकता बड़ी मार्मिक है, जो नितान्त पश्चिम है, वही नितान्त पूर्व है। यह भूगोल का सिद्धान्त है। इस बात में एक प्रकार का काव्यात्मक भाव है। इसी भाव को अभिव्यक्त करते हुए केलीफोर्निया की भौगोलिक स्थिति का परिचय डॉ. उपाध्याय इस प्रकार देते हैं—

''केलीफोर्निया पश्चिम है, अमेरिका का पश्चिम, हमारे हिन्दुस्तान का कहिए

दूर–सुदूर पूरब। यह भी द्वन्द्वात्मक सत्य है कि जो अति पश्चिम है वही अति पूर्व भी होता है। वस्तुतः द्वन्द्वात्मकता का यह सहज सिद्ध सत्य है, पर इसकी व्याख्या नितान्त सादी है, कि पृथ्वी गोल है।''[29]

लेखक ने यत्र-तत्र भौगोलिक परिवेश का अंकन तटस्थ होकर किया है और आगे बढ़ गया है। प्रायः यह अंकन परिचयात्मक होता है; यथा–रोम के बाद समुद्री यात्रा में सार्डीनिया द्वीप का संक्षिप्त परिचय देखिए–

''हम सार्डीनिया के विशाल द्वीप और इटली के बीच से निकल रहे हैं। सार्डीनिया भूमध्य सागर के सबसे बड़े द्वीपों में से है। इससे बड़ा केवल सिसिली का द्वीप है। अधिकतर यह पहाड़ी है और इसकी आबादी दस लाख है।''[30]

मिस्र की भौगोलिक अवस्थिति का संकेत देखिए–

''प्राचीन पिरामिडों की छाया में पाशाओं का देश खड़ा है। आज वह मिस्र कहलाता है, अरबों का मिस्र। कभी वह इजिप्त कहलाता था, ग्रीकों का इजिप्त।

''भूमध्य सागर के पतले लम्बे मिस्र के उस देश में जो नील-नदी की घाटी में दक्खिन की ओर फैला हुआ है और जहाँ किसान साल भर में अन्न की दो फसलें काट लेता है, आज पाशाओं का राज है।''[31]

डॉ. उपाध्याय के भौगोलिक-परिवेश-निरूपण की एक विशेषता यह भी है कि वे भूगोल को भी इतिहास से जोड़ते चलते हैं साथ ही जलवायु सम्वन्धी विचित्रता का दिग्दर्शन भी करवाते चलते हैं। ईरान की भूमि को कालिदास के काव्य में वर्णित सन्दर्भों से जोड़ना ऐसा ही रोचक प्रसंग है–

''असूरिया की ज़मीन एक ओर ईरान से लगी है, दूसरी ओर सीरिया तुर्की से। आबोहवा वहाँ की नम ठण्डी है, वहीं जिसे मेडिटरेनियन (भूमध्यसागरी) जलवायु कहते हैं, जहाँ सेव और अनार होते हैं, जमीन जहाँ की दाख की (अंगूरी) लताओं से ढंकी रहती है। कालिदास ने रघु की दिग्विजय के सिलसिले में ईरानी ज़मीन को 'द्राक्षावलय भूमिषु' कहा है।''[32]

ईराक की द्विरूप जलवायु और उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का एक साथ कथन देखिए–

''एक ही देश ईराक जहाँ एक ओर बगदाद और करबला तपते हैं, वहाँ उत्तर का यह भू-भाग अंगूरों से ढक जाता है। करबला के कस्बे का वहिरंग बहुत कुछ समरकंदी माहौल से घिरा है, वहीं मुहम्मद साहब के नवासे अली फातिमा के लाल हसन और हुसैन् कुर्बान हो गए थे। पर यह इलाका जैसे यूरोप का टुकड़ा है।''[33]

लेखक ने स्वाभाविक रूप से भौगोलिक परिवेश और मानव-जीवन से उसकी अनुकूलता की चर्चा की है। प्रकृति तथा जलवायु के अनुरूप बदलती हुई ऋतुओं के अनुरूप मनुष्य अपने को कैसे ढाल लेता है, इस तथ्य का उल्लेख भी यत्र-तत्र लेखक ने किया है। डेनमार्क की प्रकृति और वहाँ के मानव-व्यवहार के चित्र

देखिए–

"धूप और पानी। डेनमार्क के निवासियों के अभिमत आहार हैं। आहार की तरह आहार। लम्बे जाड़ों, ठिठुरते वसन्त के बाद धूप आती है। गर्मी की अलसा देने वाली धूप, जो नगरों की विशाल अट्टालिकाओं के बाहर विशेषतः सागर, खाड़ियों, फ्योर्दों के तीर ही विपुल मात्रा में मिलते हैं और जल तो डेनों का वास्तविक अर्थ में जीवन है, सर्वत्र लहराता है।...ओह ! कितना जल है !"[34]

लेखक ने अपनी आँखों से निकर पहिने नंगी, सफेद, पुष्ट देह वाले सात से बारह साल के बच्चों को खाड़ी की गहराई में नावें ठेलते हुए देखा है। यही तो है–मानव की भौगोलिक अनुकूलता।

भौगोलिक परिस्थितियों से सीधा सम्पर्क होने के कारण डॉ. उपाध्याय किसी विशिष्ट देश की साहित्यिक एवं कलात्मक प्रवृत्तियों की समीक्षा भी एक समग्र दृष्टि से तौलकर करते हैं। नार्वे के साहित्यिक इतिहास का ब्यौरा देने से पूर्व वे इसीलिए वहाँ के भौगोलिक परिवेश का अंकन करते हैं और बताते हैं कि नार्वे की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ वहाँ के भौगोलिक परिवेश से ही जन्मी हैं–

"नार्वे को प्रकृति ने अपने हाथों सँवारा है। यूरोप का वह प्रायः उत्तरतम देश है। आधी रात को वहाँ सूर्य चमकता है और उषा-काल उत्तरी क्षितिज पर लघुतम अग्नि-पिण्ड उछलते हैं, अनन्त तारिकाएँ ज्वलन्त स्वर्णमयी नीहारिकाओं के रूप में निरन्तर उछलती, टूटकर बिखरती रहती है। ऐसा नार्वे स्वयं ही कवि की चेतना को जागृत करेगा।"[35]

भूगोल की भाषा में कहा जाता है, कि अमुक स्थान पर अमुक प्रकार की प्रकृति, जलवायु, जीवन-चर्या अथवा खेती-बाड़ी होती है। यात्रा-साहित्यकार की भाषा भिन्न होती है–वह कहता है–मैंने अमुक स्थान पर ऐसा देखा है–उस देखने में परिवेश मुखरित होने लगता है। नार्वे की जलवायु का एक चित्र और देखिए–

"नार्वे में अभी हाल में ही बड़ी बर्फ गिरी है। नार्वे में ही क्यों, उत्तर के सारे देशों में–स्वीडन, फिनलैण्ड और डेनमार्क में भी। सारे मकानों की छतें, मोटर-गाड़ियाँ, मैदान, पहाड़, नदी आदि बर्फ से ढके हैं। लोग सर्वत्र स्कीइंग के मद में हैं। जैसे अपने देश में बच्चे पतंग के खेल में दीन-दुनिया भूल जाते हैं, वैसे ही नार्वे-स्वीडन में लोग स्कीइंग के सामने सब कुछ त्याज्य समझते हैं।"[36]

डॉ. उपाध्याय कभी-कभी भौगोलिक जानकारी को केवल गणनाओं में बाँधकर प्रस्तुत करते हैं। किसी देश की जन-संख्या, क्षेत्रफल आदि का विवरण और नार्वे का बाह्य परिचय द्रष्टव्य है–

"यह देश अत्यन्त छोटा है–155 मील लम्बा और 108 मील चौड़ा, इसकी जनसंख्या कुल 40,45,232 है। भारत के एक जिले के बराबर।"[37]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य

में पुरातात्त्विक तथा ऐतिहासिक परिवेश अधिक मुखर हुआ है। कहीं-कहीं ऐतिहासिक विवरण की अधिकता के कारण उनका यात्रा-साहित्य बोझिल हो गया है। प्रारम्भिक यात्रा-वर्णनों में इसीलिए निबन्धात्मकता तथा रेखाचित्रात्मकता आ गई है। एक पक्ष यह भी है कि ऐतिहासिक विवरण उनके यात्रा-साहित्य में बड़ी रोचकता के साथ प्रकट हुए हैं। उन विवरणों में कहीं कहानी के तत्त्व हैं, कहीं रेखाचित्र के और कहीं कविता के। पुरातात्त्विक, ऐतिहासिक एवं भौगोलिक परिवेश उनके यात्रा-साहित्य की प्राण-भूत विशिष्टताएँ हैं। डॉ. उपाध्याय के विवरण मात्र सूचनात्मक नहीं हैं, अपितु प्रतिक्रियास्वरूप प्रस्तुत भावसंकुल, रोचक तथा मार्मिक चित्र हैं। वस्तुतः अतीत उनके यात्रा-साहित्य में बहुधा प्राण-तत्त्व के रूप में उपस्थित हैं।

सन्दर्भ

1. पण्डित गोपालप्रसाद व्यास का लेखक के नाम व्यक्तिगत-पत्र; दिनांक 12-3-1980
2. पुरातत्त्व का रोमांस; डॉ. भगवतशरण उपाध्याय; पृ. 3
3. तदेव, भूमिका।
4. देखिए—सवेरा, संघर्ष गर्जन; डॉ. भगवतशरण उपाध्याय; भूमिका
5. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 90-91
6. घूमने का राज; पृ. 227
7. वो दुनिया; पृ. 219
8. वही; पृ. 220
9. पुरातत्त्व का रोमांस; पृ. 33-34
10. वो दुनिया; पृ. 220
11. वही; पृ. 222-23
12. वही; पृ. 225
13. बुर्जियों के पीछे; डॉ. भगवतशरण उपाध्याय; पृ. 24
14. वही; पृ. 8
15. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 144-45
16. लाल चीन; पृ. 2
17. तदेव; पृ. 195
18. सागर की लहरों पर; पृ. 241
19. वही; पृ. 217
20. वही; पृ. 188
21. घूमने का राज; पृ. 108-9
22. बुर्जियों के पीछे; पृ. अ-1
23. घूमने का राज; पृ. 255-56
24. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 106
25. घूमने का राज; पृ. 190
26. वही; पृ. 126
27. वही; पृ. 226-27

28. वही; पृ. 227
29. घूमने का राज; पृ. 51
30. सागर की लहरों पर; पृ. 129
31. वो दुनियाँ; पृ. 227
32. घूमने का राज; पृ. 267-68
33. वही; पृ. 268
34. वही; पृ. 131-32
35. विश्व-साहित्य की रूपरेखा, डॉ. भगवतशरण उपाध्याय; पृ. 315
36. घूमने का राज; पृ. 88
37. वही; पृ. 114

4

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में सभ्यता एवं संस्कृति

मनुष्य समाज की इकाई है। व्यक्ति और समाज दोनों के सम्बन्ध अन्योन्याश्रित हैं। सामज सम्बन्धों का जाल है और वे बहुआयामी सम्बन्ध सभ्यता और संस्कृति की रचना करते हैं। सभ्यता को डॉ. भगवतशरण उपध्याय 'सामाजिक-बोध' के रूप में परिभाषित करते हैं और उसी सामाजिक बोध की 'चरितार्थता' को वे संस्कृति मानते हैं। संस्कृति समाज के विविध पक्षों का एक समग्र रूप है। डॉ. उपाध्याय ने उसके व्यापक स्वरूप को ही दृष्टि में रखा है। वे लिखते हैं–

"सभ्यता का संक्रमण अनजाने अनदेखे के उद्‌घाटन का अभिमान है। काल के दौरान मानव की मेधा से खोजी, उसके भुजबल और सामर्थ्य से अर्जित उसकी उपलब्धियाँ हैं, उन उपलब्धियों का प्राण-बोध और उनकी सार्वजनीन समग्रता का संस्कार संस्कृति है।"[1]

संस्कृति की समग्रता की बात डॉ. भगवतशरण उपाध्याय ने अन्यत्र भी इस प्रकार कही है–

"इतिहास समग्र है, अनवरत और सार्वभौमिक है, क्षैतिज और उर्ध्वाधर है। और इसी प्रकार संस्कृति समग्र है, अनवरत और सार्वभौमिक है, क्षैतिज और उर्ध्वाधर है।...

संस्कृति समस्त के लिए समस्त का योगदान है, मिश्रित-समन्वित संयोग है। जल कणों की भाँति इकाइयाँ एक-दूसरे से जुड़ती हैं, और एक प्रवहमान जलराशि बनाती है।"[2]

इस समग्र दृष्टि का अर्थ यह हुआ कि जहाँ भी मनुष्य का अस्तित्व है, वहाँ समाज और संस्कृति का एक रूप निश्चित होगा। मानव का अतीत, वर्तमान, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं पारिवारिक जीवन, कला-साहित्य, लोक-जीवन के विश्वास तथा जीवन-मूल्य सभी कुछ सभ्यता तथा संस्कृति में

परिगणित किए जाते हैं। महीयसी महादेवी वर्मा ने संस्कृति के समग्र रूप पर विचार करते हुए इसी तथ्य को प्रस्तुत किया है–

"एक व्यक्ति को पूर्णतया जानने के लिए जैसे उसके रूप, रंग, आकार, बोलचाल, विचार, आचरण आदि से परिचित हो जाना आवश्यक हो जाता है, वैसे ही किसी जाति की संस्कृति को मूलतः समझने के लिए उसके विकास की सभी दिशाओं का ज्ञान अनिवार्य है। किसी मनुष्य-समूह के साहित्य, कला, दर्शन आदि के संचित ज्ञान और भाव का ऐश्वर्य ही उसकी संस्कृति का परिचायक नहीं उस समूह के प्रत्येक व्यक्ति का साधारण शिष्टाचार भी उसका परिचय देने में समर्थ है।"[3]

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय की सांस्कृतिक दृष्टि मूलतः इतिहास को केन्द्र बनाकर व्यक्त होती है, किन्तु समाज और संस्कृति को देखने के जो अन्य पक्ष हैं, वे भी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं, जिनका विवेचन यहाँ क्रमशः किया जाना है। इस विवेचन में भी संस्कृति के तत्त्व प्रमुख नहीं हैं, प्रमुख डॉ. उपाध्याय का यात्रा-साहित्य है, जिसमें अभिव्यक्त सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों का निरूपण ही यहाँ अभिप्रेत है।

1. राजनीतिक जीवन

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय राजनीतिक दृष्टि से मार्क्स और लेनिन की विचारधारा के पक्षधर थे, इसलिए वे समाज में होने वाले वर्ग-भेद एवं शोषण के कट्टर विरोधी थे। शोषण, चाहे व्यक्तिगत स्तर पर हो, सामाजिक स्तर पर अथवा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर डॉ. उपाध्याय ने उसे अमानुषिक मानकर उसका निरन्तर विरोध किया है। उनके यात्रा-साहित्य में उनकी यह राजनीतिक प्रतिबद्धता सर्वत्र दिखाई देती है। दूसरे शब्दों में कहें कि वे सच्चे मानववादी थे। सच्चे अर्थों में मानव की समता सुख-समृद्धि और अधिकारों की उन्हें चिन्ता थी। ऐतिहासिक परिवेश को सामने रखकर उन्होंने निरन्तर इस बात पर ज़ोर दिया कि मनुष्य को समानता का अधिकार मिलना ही चाहिए। मनुष्य की विषमता को ही लेखक इस बात का प्रमाण मानता है कि ईश्वर की सत्ता कहीं नहीं है। यदि वह (ईश्वर) होता तो अपनी सभी सन्तानों को बराबर सुखी सम्पन्न बनाता।[4]

चीन (पीकिंग) की यात्रा लेखक ने शुद्ध राजनैतिक स्तर पर की है और अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'कलकत्ता से पीकिंग' में उसने राजनीतिक शोषण, घुसपैठ अथवा अधिनायक तन्त्र की क्रूरताओं का भण्डाफोड़ किया है। राजनीतिक अनधिकरण के कारण एक देश ने दूसरे देश पर कैसे-कैसे अत्याचार और शोषण किए हैं, इसकी विवेचना उक्त पुस्तक में मिलती है। विश्व-राजनीति में उस समय एशियाई देशों की अवस्था क्या थी, इसकी भी झलक उक्त पुस्तक के वर्णनों से मिलती है। तत्कालीन विश्व-राजनीति का चित्र लेखक के ही शब्दों में देखिए–

"विचारों को पंख लग गए।...नीचे युद्धविगलित संसार—संयुक्त राष्ट्र-संघ का मज़ाक, कोरिया की कुचली मानवता, वियतनाम का मरणान्तमक संघर्ष, मलाया में साम्राज्यवाद की सड़ी जड़ों को रोपने की फिर से कोशिश, केनिंया में विकराल अत्याचार, दक्षिण अफ्रीका में जन-विरोधी कानूनों का घिनौना प्रयोग, त्यूनीशिया का अदम्य विद्रोह, ईरान में आनबुल का बुद्धूपन और पातोनिका में अंकल सेम की मूर्खता, एशिया और दक्षिण अमेरिका में नम्बर चार योजना के फौलादी शिकंजे से छूटने के भगीरथ प्रयत्न और यह अभी हाल का कम्युनिष्टी प्रोजेक्ट (गाँव-सुधार) जो अपने देश की कुँवारी ज़मीन पर बंझा घास की भाँति छाता जा रहा है।"[5]

'वो दुनिया' नामक यात्रा-पुस्तक में डॉ. उपाध्याय ने एक रेखाचित्र लिखा है—"अंकिल सेम हँसता है।" अंकिल सेम की राजनीतिक एवं युद्ध सम्बन्धी नीतियाँ इस लेख से स्पष्ट होती हैं। किस प्रकार विश्व-राजनीति अथवा विश्व-शान्ति के लिए अंकिल-सेम कराल-काल बनकर खड़ा था, यह विवरण इस लेख में मिलता है। अंकिल सेम प्रथम पुरुष में बोलता है—

"मैं युद्ध हूँ, क्योंकि मैं अंकिल सेम हूँ...दूर से ही मैं सबको बरबाद करता हूँ। अपनी इस ऊँचाई से आसमानी महलों से, जहाँ कोई पहुँच नहीं सकता, जहाँ मुझे कोई छू नहीं सकता। मनहट्टन की गगन-चुंबी अट्टालिकाओं में मेरे दफ्तर हैं और वहीं शानोशौकत में बैठा मैं अपनी संहारक योजनाएँ बनाता हूँ। कौन कहता है कि दुनियाँ बड़ी हैं, दूर तक फैली हुई है ? यहाँ तो सब इसी मुट्ठी में सिमटे हुए हैं ! आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड, अमरीका और यूरोप, सातों समुन्दर।"[6]

चीन में हुए एशियाई शान्ति-सम्मेलन में लेखक ने विश्व-राजनीति को गम्भीरता से जाना-परखा। इस सम्मेलन में पनामा प्रतिनिधि मण्डल के तरुण नेता कारलोस फ्रांसिस्को चंगमारिन का ओजस्वी भाषण उल्लेखनीय है। इस भाषण से पनामा पर अमरीकी अत्याचारों का खुलासा होता है। अमरीकी अत्याचारों से पनामा में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक दृष्टि से सब कुछ जैसे टूट गया था। कारलोस के अनुसार केनल-कम्पनी पनामा को गुलामी और जुल्म की भयंकरता में ढकेल रही थी—

"वह हमारे ऊपर जुल्म करने वाली राजनीति का निरंकुश यन्त्र है, कि वह हमारे सामाजिक भ्रष्टाचार और सांस्कृतिक प्रतिगति की जननी है, कि हमारी नारियों में रुग्णता और बच्चों में आहारहीनता की. जातीय पक्षपात की, पर्वत में शरण लेने वाले इण्डियनों के प्रति अमानुषिक अत्याचारों की ओर वही कम्पनी का इस भयानक झूठे विश्वास और गलतफहमी का कारण भी है कि हम पनामा-वासियों का अपना कोई देश नहीं कि हम अंग्रेजी यानी दीगर ज़बान बोलते हैं।"[7]

फ्रांसिस्को बताता है कि पनामा में एक कहावत चल पड़ी है—"पनामा के रहने वालो सावधान हो जाओ, बेड़ा जा रहा है।" जिसका अर्थ होता है—बाप अब

अपनी बेटियों की फिक्र करें, खाविन अपनी बीबियों की। सामान बेचने वाले अपने सामान की, पनामा राष्ट्रीय पुलिस के जवान अमरीकी सैनिकों से पिटने के लिए वे तैयार हो जाएँ, क्यूबा कोस्ता, रीका और चिली की अभागी औरतें होटलों, भट्टियों और भ्रष्टाचार के दूसरे गढ़ों में बिकने के लिए तैयार हो जाएँ।[8]

पीकिंग के शान्ति सम्मेलन का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए डॉ. उपाध्याय ने कविवर सुमित्रानन्दन पंत के नाम पत्र में लिखा था—"मैं तो आज के इस पीकिंग की बात लिखने जा रहा हूँ। आज के इस पीकिंग की, जिसके आंगन में दूर देशों के तपस्वी, साधक और जन-सेवक, कवि और चिन्तक एकचित्त से विश्व में युद्ध का विरोध और शान्ति का आह्वान करने आए हैं। जानता हूँ कवि, आपको भी शान्ति की यह अर्चना अभिमत है।"[9]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विश्व राजनीति में भारत की गुटनिरपेक्ष नीति के सफल व्याख्याकार के रूप में डॉ. उपाध्याय ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। अमरीकी विश्वविद्यालयों में अध्ययन करते समय तथा संस्थानों में भाषण देते समय डॉ. उपाध्याय से प्रायः यह पूछा जाता था कि नेहरू न इधर, न उधर, भला दोनों की सीमा के तार पर क्यों बैठे हैं ?—"व्हाई इज ही सिटिंग ऑन द फेन्स ?" डॉ. उपाध्याय सर्वत्र ही उत्तर देते थे कि—नेहरू नवोदित राष्ट्र के एक समझदार नेता हैं। भारत सदियों से शोषित-पीड़ित देश है, इसी कारण भारत किसी का शत्रु नहीं बनना चाहता। वह सभी का मित्र बनना चाहता है। जिसके पास कुछ नहीं है और जो निर्माण की इच्छा करता है, वह मित्र ही बना सकता है, शत्रु बनाना उसके लिए नितान्त घातक होगा। स्विट्ज़रलैण्ड, नार्वे, डेनमार्क, स्वीडन ने, देखिए, दो-दो सौ वर्षों से एक भी लड़ाई नहीं लड़ी है और किस कदर सम्पन्न हैं वे। नेहरू राष्ट्रों के बीच सीमा पर खिंचे हुए तार पर हरगिज नहीं बैठे हैं, मात्र शत्रु न बनाने के प्रयास में राष्ट्रीय गुटों से उदासीन हैं।[10]

एक भाषण के पश्चात् एक अमरीकी पत्रकार ने डॉ. उपाध्याय से वही प्रश्न किया कि "नेहरू सीमा के तार पर क्यों बैठे हैं ?" लेकिन प्रश्न के साथ ही यह शर्त भी लगा दी कि इस प्रश्न का इस बार नया उत्तर दिया जाय, घिसा-पिटा उत्तर नहीं, जो डॉ. उपाध्याय अब तक देते आए हैं। डॉ. उपाध्याय ने उस पत्रकार से बड़े नाटकीय ढंग से उसके पिता का नाम पूछा। उसने उत्तर दिया—"सिल्वर स्मिथ"। डॉ. उपाध्याय ने इस प्रश्न को कई बार दोहराया और कहा कि आप अपने पिता का कोई नया नाम बताइए क्योंकि वह नाम जो आप बता रहे हैं—'सिल्वर स्मिथ' वह निहायत पुराना, बासी और 'स्टेल' है। वह अमरीकी पत्रकार अवाक् रह गया और श्रोता ज़ोर से हँस पड़े। डॉ. उपाध्याय ने अपनी नाटकीय प्रश्नोत्तरी का निचोड़ प्रस्तुत किया—

"मेरे प्यारे दोस्त, पिता के नाम की तरह सच का चेहरा बस एक ही होता

है। प्रतिबिम्बित करने वाले चेहरे, अनेकानेक चेहरे केवल कोयले से बने हीरे के होते हैं या बहुमुखी काँच के। सो नेहरू सम्बन्धी इस सवाल का जवाब बस एक ही है, सदा एक ही रहेगा, क्योंकि वही सच है।"[11]

राजनीतिक दृष्टि से डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में दो प्रकार की अभिव्यक्ति है—प्रथम तो तत्कालीन राजनीतिक परिवेश का निरूपण और दूसरे राजनीति-सम्बन्धी लेखक की व्यक्तिगत मान्यताओं की अभिव्यक्ति जिनमें इतिहास और वर्तमान को दृष्टि में रखते हुए भारतीय राजनीति की भी व्यजंना सम्मिलित है। डॉ. हरदयाल उचित ही डॉ. भगवतशरण उपाध्याय को उन यात्रा-साहित्यकारों में परिगणित करते हैं, जिनका राजनीतिक आग्रह अधिक स्पष्ट है।[12]

2. सामाजिक जीवन

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय का यात्रा-साहित्य तो समाज-सापेक्ष है ही, उनके सम्पूर्ण लेखन पर विहंगावलोकन करने से पता चलता है कि उनकी दृष्टि मूलतः समाजशास्त्रीय है। प्रारम्भ में लिखे हुए उनके दो महत्त्वपूर्ण शोध-ग्रन्थ इसके सबसे अच्छे प्रमाण हैं—'वीमेन इन ऋग्वेद' और 'इण्डिया इन कालिदास'। इन दोनों शोध-ग्रन्थों में लेखक ने समाज-शास्त्रीय दृष्टि से साहित्य की समीक्षा की है।

समाज की इकाई परिवार है। समुदाय, सम्प्रदाय, धर्म, जाति, विवाह, स्त्री-पुरुष सम्बन्ध, सामाजिक संस्थाएँ, सभ्यता और संस्कृति, सामाजिक विकास की दिशाएँ और प्रक्रियाएँ सभी समाज-अध्ययन के क्षेत्र में परिगणित किए जाते हैं; लेकिन यहाँ उल्लेखनीय है कि अपने यात्रा-साहित्य में डॉ. उपाध्याय ने न तो इन सभी सामाजिक स्थितियों का क्रमबद्ध निरूपण किया है और न ही यात्रा-साहित्य विधा के लिए वह सब अपेक्षित है। चलते-चलते जो कुछ दृष्टि-पथ में आता चला गया, वह सभी ज्यों-का-त्यों उनके यात्रा-साहित्य में चित्रित है। उनके यात्रा-साहित्य में सामाजिक जीवन के दो मुख्य रूप मिलते हैं—

1. ऐतिहासिक समाज।
2. वर्तमान समाज।

दोनों प्रकार की सामाजिक स्थितियों के चित्रण के द्वारा लेखक ने विश्व के विभिन्न समाजों के विकास-क्रम को भी दर्शाया है। अतीत और वर्तमान का एक साथ प्रस्तुतीकरण समाज की दो अवस्थाओं को आमने-सामने ला खड़ा करता है।

चीन में माओ-शासन के प्रभावस्वरूप वेश्यावृत्ति का उन्मूलन हुआ और वेश्याओं को सामाजिक सम्मान प्राप्त हुआ, इसकी एक झलक देखिए—

"चीन की वेश्याएँ आज गौरवशाली माताएँ हैं, लाज-लब्ध वधुएँ हैं। तरुणों ने उन्हें अपने पौरुष की छाया दी है। आज वे खेतों पर हैं, कारखानों में हैं, सेनाओं में हैं, देश और समाज की उन बेशुमार संस्थाओं में हैं, जिनके आधार पर चीन

का न केवल उत्कर्ष निर्भर करता है, वरन् जिन पर उनके जीवन की आधार-शिला रखी है।"[13]

दूसरी ओर हांगकांग में वेश्यावृत्ति, सामाजिक विद्रूपता का रूप धारण कर चुकी है–

"हांगकांग की दस हजार रजिस्टर्ड वेश्याओं में से, पचास हज़ार अलिखित वेश्याओं में से और उनसे भिन्न जो शंघाई से भाग आई हैं–पाप की साकार परिणति। वे अपने कोठों पर, हांगकांग के वेश्यालयों, होटलों, सरायों, भट्टियों में अपना घृणित रोज़गार चला रही हैं। जानने वालों का कहना है कि ढलती रात सड़क पर चलने वाले अगर सावधान न हों तो तवायफों का उन्हें उड़ा ले जाना कुछ अजब नहीं।"[14]

हांगकांग के भिखमंगों का जो रूप लेखक के समक्ष आता है, उसके प्रति लेखक की प्रतिक्रिया वहाँ की सामाजिक दुरवस्था का प्रदर्शन करती है–

"घिनौने, लालची भिखमंगे, बूढ़े और बच्चे, सहसा मुँह की चेष्टा बिगाड़ होंठों को बिचका देते, गिड़गिड़ाकर हाथ फैला देते।...हांगकांग के भिखमंगे भयानक हैं, आप झल्ला उठें, लाख झिड़कें-तड़पें पर वे पिण्ड न छोड़ेंगे। कम्बख्ती के शिकार इन्सानियत के पाप।"[15]

ऐतिहासिक दृष्टि से समग्र-दशा का चित्रण करते समय लेखक एक साथ अनेक सूचनाएँ प्रस्तुत करता है और उसकी तुलना भी करता चलता है; यथा–

"इंग्लैण्ड का अठारहवीं सदी का सामाजिक जीवन अत्यन्त घिनौना था, जिससे कोई बचा न था, न राजा, न रंक, न साधु न असाधु। चार्ल्स द्वितीय ने जिस सामाजिक घिनौनेपन का आरम्भ अपनी बहिन हेनरी हनुएट्टा के साथ अपने शासन-काल में किया था, उसका चरम रूप इसी अठारवहीं सदी में इंग्लैण्ड की भूमि पर आ उतरा। उसकी कुछ तुलना दण्डी के 'दशकुमारचरित' में वर्णित तात्कालिक घृणित भारतीय समाज से की जा सकती है।"[16]

अनेक बार लेखक एक गम्भीर समाजशास्त्री की भाँति सामाजिक समस्याओं के मूल में जाने का प्रयास करता है और ऐतिहासिक प्रमाण जुटाकर गवेषणा करता हुआ उस समस्या का विवेचन करता है। नारी के 'वेश्या' रूप के पीछे श्रीमानों के डालर और शराब मुख्य कारण रहे हैं। नारी को विलास का साधन मात्र बना देने के पीछे पुरुष का ही विशेष हाथ है। डॉ. उपाध्याय लिखते हैं–

"संसार के पुरुष ने जहाँ अपने सुख और साधन बटोरे हैं, अपने धर्मशास्त्र, शासन और कानून के ज़रिए जहाँ अपने लिए अभिराम जगत् रचा है, नारी तक को अपने भोग का साधन बनाया है, इस घिनौनी नारी को भी अपने घिनौने व्यापार का शिकार बना डाला है।"[17]

वेश्यावृत्ति के ऐतिहासिक विश्लेषण पर दृष्टिपात करते हुए वे लिखते हैं–

"संस्था के रूप में वेश्यागीरी बड़ा पुराना पेशा है। बाबुल और असुर देवी मिलित्ता के मन्दिरों में, मिस्र के देवालयों में, ग्रीकों की अफ्रोदीती के पुण्य भवनों में, रोमनों की वीनस के मन्दिरों में सर्वत्र वेश्याओं का प्राधान्य था, सर्वत्र पूरब ने नारी को अपनी कामेच्छा की साधिका बनाया, सर्वत्र उसे धिक्कार कर अपने धर्म और पूजन का अंग बनाया।"[18]

बाबुल में वेश्यावृत्ति एक बार इतनी भयंकर हो गई कि प्राचीन धार्मिक परम्परा से पीड़ित प्रत्येक सभ्य स्त्री वेश्या बन गई। हीरोतस ने ईसा से छठी सदी पूर्व के बाबुल की वेश्यावृत्ति के बारे में लिखा है कि पुरुष (पति) स्वयं अपनी पत्नी को मन्दिर के भीतरी बरामदे में अपने रथ पर बैठाकर पहुँचा देता था, जहाँ कोई अपरिचित एक निश्चित मुद्रा फेंककर उस नारी के साथ सहवास करता था, उस वेश्यावृत्ति के सिक्कों से मन्दिर के पुरोहितों-पुजारियों का पेट पलता था।[19]

डॉ. उपाध्याय की दृष्टि सामाजिक-जीवन के निरूपण में प्रायः विश्लेषणात्मक रही है। पश्चिम और पूर्व के सामाजिक अन्तर को उन्होंने भली प्रकार समझा है, विशेषकर ऐतिहासिक विवेचन के साथ कारणों की व्याख्या करते हुए सामाजिक विकास की प्रक्रिया बताने में उनका सामाजिक बोध अधिक स्पष्ट है।

3. आर्थिक-जीवन

डॉ. उपाध्याय के सम्पूर्ण चिन्तन का केन्द्र मनुष्य है और मानववादी विचारधारा के अनुरूप वे आर्थिक समानता के पक्षधर हैं। उनकी दृष्टि में संस्कृति के वे दोनों पक्ष महत्त्वपूर्ण हैं–जो एक ओर मानव-मूल्यों पर विशेष बल देते हैं और दूसरी ओर वैज्ञानिक प्रगति पर। शोषण-विहीन समाज की आदर्श रचना मानो लेखक की आँखों का सुन्दर स्वप्न है इसीलिए चीन के वर्तमान साम्यवादी स्वरूप की प्रशंसा करते हुए लेखक थकता नहीं है–

"चीन अपनी आवश्यकता की चीज़ें देश में बना रहा है और अपनी आर्थिक विषमता को जहाँ वह दिन-रात के परिश्रम से दूर कर रहा है वहाँ अपने बजट को सन्तुलित करने में लगा है और मूल्य की स्थिरता को दृढ़, निस्सन्देह वह केवल कुछ लोगों के रुचि-वैचित्र्य अथवा चित्त-परिष्कार मात्र के लिए देश के अपने कठिन अर्जित धन का धारासार प्रवाह सहन नहीं कर सकता।"[20]

यही आर्थिक जीवन डॉ. उपाध्याय के लिए आदर्श है। राज्य-सत्ता के इसी आर्थिक नियन्त्रण का परिणाम है कि जनता सुखी और सन्तुष्ट है। बाज़ार में गुज़रते हुए उसे कहीं धोखाधड़ी और छल-फरेब में नहीं उलझना पड़ता–

"राजमार्ग पर रोज़गार तेजी से चल रहा था, कहीं मोल-भाव नहीं, कीमत के निस्वत कहीं तर्क-वितर्क नहीं, कोई झमेला नहीं क्योंकि कीमतें चीजों के ऊपर लिखी हुई थीं।"[21]

अर्थ ही मनुष्य का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष है—अर्थ ही किसी व्यक्ति या देश को बड़ा, समृद्ध, विकसित एवं गतिशील बनाता है। अर्थ का असन्तुलन मानव-विकृतियों को जन्म देता है। अर्थाभाव मनुष्य को पशुतुल्य बना देता है और अर्थ की अधिकता भी उसे पशुतुल्य ही बनाती है। दोनों की प्रक्रिया और परिणाम विपरीत दिशाओं में होते हैं। डॉ. उपाध्याय ने दोनों ही स्थितियों का चित्रण किया है। एक ओर भिखमंगे हैं, वेश्याएँ हैं, शोषित-पीड़ित मानव हैं और दूसरी ओर राजे-महाराजे हैं, उनकी उद्दीप्त वासना है, शोषण का एक लम्बा इतिहास है। यह सभी कुछ डॉ. उपाध्याय ने अपने यात्रा-साहित्य में प्रसंगानुसार चित्रित किया है।

प्रत्यक्षतः अर्थशास्त्रीय चिन्तन न करके भी लेखक ने अप्रत्यक्ष रूप से अर्थ के समान वितरण को ही महत्त्व प्रदान किया है और उसके वैषम्य को तिरस्करणीय तथा पतनोन्मुखी माना है। लेखक ने ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत करके इसी तथ्य का समर्थन किया है कि आर्थिक विषमता से विलासिता और शोषण को बढ़ावा मिलता है, तथा मानवीय संवेदना नष्ट हो जाती है। मिस्र के पिरामिडों की भव्यता का निरूपण करते हुए लेखक यह भूलता नहीं है कि किस प्रकार गुलामों ने अपने जीवन की आहुति देकर अमीरों की मृत्यु को अमर बनाने का उपक्रम किया। गुलाम बेमौत मारे गए, कोड़े खाते रहे, घर-परिवार के सुख के लिए तरसते रहे और गगन-चुम्बी पिरामिड बनाते रहे। पिरामिड शीघ्र बनें इसलिए गुलामों के बच्चों को नील नदी में फिंकवा दिया गया। बेगार करने वाले गुलाम फिर भी पिरामिड उठाते रहे और दूसरी ओर अमीरों की भोग-लिप्सा इतनी बढ़ती चली गई कि उसका कोई अन्त नहीं—

''इतना सोना, करोड़ों का, और इतने जवाहरात निश्चय तपस्वी का तप भी तोड़ देंगे। ये दूर-दूर की लूट से आए थे, विविध प्रजाओं के धन थे, उनकी कमाई जिसको 'बड़े मकानों' में रहने वाले ने भोगा था। फिर अब वह 'ममी' के रूप में भी मरकर भोगने चला इनको।...पिरामिड खड़ा था, पर उसमें रहने वाले का कण-कण उसी रेत में मिल रहा था, जिसमें गुलामों और उनके बच्चे-बीवियों की रज भरी थी।''[22]

इस आक्रोश में लेखक उस व्यवस्था का विरोध करता है, जो मनुष्य और मनुष्य को अर्थ के सम्बन्धों के आधार पर बाँट देती है। लेखक को हर देश की स्वतन्त्रता, स्वायत्तता तथा समता इसीलिए काम्य है कि मनुष्य को उसका आर्थिक अधिकार प्राप्त हो सके।

औद्योगीकरण, युद्ध और आर्थिक सम्पन्नता, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इन तीनों का एक समीकरण है। जो देश आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है और औद्योगिक विकास पर ही बड़े हुए हैं, वे युद्ध चाहते हैं। उनके उद्योगों में बने हथियार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में बिकते हैं, इसलिए बड़े देश सदा युद्ध चाहते हैं। यह एक सुविचारित

योजना है और डॉ. उपाध्याय को बड़े सजग अर्थशास्त्री की भाँति इसकी परख करने की मेधा प्राप्त है। वे लिखते हैं–

"इस कसौटी पर संसार के शक्तिमान राष्ट्रों को कसते ही सच्चाई स्पष्ट हो जाएगी। पहले की राजनीति का यह दावा था कि साम्राज्यवादी राष्ट्र केवल वे ही होते हैं, जिनकी भौगोलिक सीमाएँ संकीर्ण होती हैं और जिनके भयानक औद्योगीकरण से बने माल की निरन्तर बढ़ती जाती मात्रा की खपत के लिए बाज़ार की ज़रूरत हुआ करती है। इस सिद्धान्त के उदाहरण स्वरूप इंग्लैण्ड, जर्मनी, जापान की कैफियत पेश की जाती थी।"[23]

डेनमार्क की तत्कालीन आर्थिक नीतियाँ और उन पर डालर का प्रभाव अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक-सम्बन्धों में एक उल्लेखनीय तथ्य है, जिसे लेखक पैनी दृष्टि से देखता था–

"...कुछ दिनों से उसने (डेनमार्क ने) अपने-अपने अर्थ की नयी योजना निकाली और उसको इस रूप में पूरा करना चाहा, कि साधारणतः उसका रूप आकर्षक दीखने लगा है, उसकी बीमा की योजना, बूढ़ों की देखभाल का इन्तज़ाम, प्रौढ़ साक्षरता की योजना सभी कुछ आकर्षक लगते हैं, लेकिन यह सारा आकर्षण डालर की दुनिया पर खड़ा है, जिसकी बुनियाद पर आइज़न हावर का शस्त्राधार निर्मित हो रहा है।"[24]

वस्तुतः लेखक के यात्रा-साहित्य में उसका आर्थिक चिन्तन एक प्रकार से समग्रता लिए हुए है, जिसमें राजनीतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक परिवेश घुला-मिला-सा प्रतीत होता है। लेखक की जो राजनीतिक प्रतिबद्धता है, उसी से उसकी आर्थिक चिन्तना भी प्रभावित है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक चिन्तन एवं आर्थिक असन्तुलन के कारण उत्पन्न साम्राज्यवादी नीतियों की वैज्ञानिक समीक्षा डॉ. उपाध्याय ने की है।

4. धार्मिक जीवन

धर्म का अर्थ यहाँ व्यापक नहीं है, अपितु विभिन्न पूजा-पद्धतियों एवं ईश्वर के सम्बन्ध में विविध विश्वासों से है। प्राचीन काल से ही धर्म का अंकुश मानव-समाज पर रहा है और धर्म की ओट में ही सामाजिक शोषण, अत्याचार, अनाचार और भ्रष्टता की लम्बी गाथा विकसित होती रही है। लेखक मूलतः नास्तिक है, ईश्वर के अस्तित्व में उसे विश्वास नहीं, इसीलिए अधिक कठोरता से उसने धार्मिक विद्रूपताओं, आडम्बरों और भ्रष्टताओं पर आघात किया है। ऐतिहासिक प्रमाण जुटाते हुए लेखक ने यह सिद्ध किया है कि धर्म के नाम पर धर्माधिकारियों ने जनता पर अत्याचार किए हैं। ईश्वर की अस्तित्वहीनता के लिए भी लेखक का यही तर्क है कि ईश्वर की सन्तानें उसी के सामने दीन-दुःखी, दरिद्र

हैं। लेखक पूछता है, कि आखिर उसकी रहमत कहाँ बरसती है ? श्रीमानों पर अत्याचारियों पर और अन्यायियों पर क्यों ? ईमानदारों, गरीबों, सर्वहाराओं पर भला क्यों नहीं ?[25] मनुष्य ने धर्म और ईश्वर की आड़ में जनता का शोषण किया है। धर्म के ठेकेदार उससे वह सब कुछ करवाते रहे, जो अनैतिक और घृणास्पद है। बाबुल और असुर की देवी मिलित्ता के मन्दिरों में, मिस्र के देवालयों में सर्वत्र पुरुष ने नारी को अपनी कामेच्छा की साधिका बनाया, सर्वत्र उसे धिक्कारकर भी धर्म और पूजन का अंग बनाया। बाबुल में तो धार्मिक अनुष्ठान इतने विद्रूप हो गए थे, कि सामान्य-जन अपनी स्त्रियों को मन्दिरों में खुली वेश्यावृत्ति के लिए पहुँचा आते थे और उस वेश्यावृत्ति की आमदनी से पण्डे-पुरोहितों अथवा राजाओं का पेट भरता था।[26] उड़ीसा, बंगाल और असम प्रान्तों में तन्त्र-साधना और बौद्ध धर्म की विद्रूपताएँ इतनी अधिक बढ़ गईं कि वैष्णव धर्म में जो अधार्मिक और अनैतिक आचरण थे, वही सब तान्त्रिकों के धार्मिक आचरण बनें। खुले आम व्यभिचार ने सामाजिक मान्यता प्राप्त कर ली थी। डॉ. उपाध्याय लिखते हैं–

"गुह्यक आदि तन्त्रों ने एलान किया कि रजक (धोबी)-कन्या से जो सिद्धि प्राप्त होती है वह किसी मात्रा में जप-तप से नहीं। इतना ही नहीं कुछ तन्त्रों ने तो यहाँ तक एलान किया जो उनका (ब्राह्मणादिक) अधर्म है, वही हमारा धर्म है"[27] इसीलिए उड़ीसा के देवायतन, देव-क्षेत्र, योगिनियों से, सिद्धि-साधिकाओं धोबिनों, डोमिनों से भर गए। धर्म और जन-विश्वास का यह घृणित आचरण एक अंग बन गया–इतना कि मन्दिर के ऊपर श्रृंगारिक, घृणित दृश्य देख गृहस्थ अब भयभीत होने लगा। उन्हें उसने पूजने का एक स्वाभाविक अंग माना। जब इस प्रकार के देवत्व के सूचक ये दृश्य हो गए, जो उन्हें चरितार्थ होने देने में किसी को क्यों आपत्ति हो सकती थी ?"[28]

इस प्रकार डॉ. उपाध्याय ने धर्म के रूढ़िग्रस्त पक्ष को विशेष रूप से आलोचित किया है। धर्म के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्ष की विवेचना करते हुए लेखक परिवर्तन की ऋणात्मक अधोगति को पसन्द नहीं करता। समुद्र-यात्रा में लेखक को जब सुस्वादु दूध मिलता है, तब वह भारतीय गौ-पूजा की रूढ़ि की आलोचना करने लगता है। उसे लगता है कि जो भोजन हमारी गायों को मिलता है, उससे दूध न तो अधिक मात्रा में ही हो सकता है और न इतना अच्छा ही–

"गौमाता के नाम शालाएँ चलाने वाले और सभाएँ करने वाले हमारे श्रद्धालु गौहत्या के नाम पर नारे तो लगाते हैं, पर इसे नहीं देखते कि उनको रखने वाले कसाई के सारे साधन उनके लिए उपस्थित कर देते हैं।"[29]

धर्म की दुरभिसन्धियों की ओर संकेत करते हुए लेखक धर्म पर बात नहीं करना चाहता। उसका अपना एक धर्म है–मानव-धर्म, मानव के लिए शान्ति की स्थापना का धर्म। रोम के पोप से मिलने से पूर्व वह अपनी बातचीत के मुद्दों की

पूर्व घोषणा करता है–

"मैंने कह दिया कि मेरा काम (सामूहिक रूप से मिलने पर) न चलेगा, क्योंकि मेरा धर्म से कोई ताल्लुक नहीं, शान्ति से है, और यदि उन्होंने मुझे समय दिया तो मैं शान्ति के सम्बन्ध में कुछ बात कहूँगा, कुछ सुनूँगा।"[30]

रोम के पोप से साक्षात्कार के समय लेखक ने उससे केवल शान्ति की कामना को लक्ष्य बनाकर ही बात की और पोप की धार्मिक कट्टरता, हठधर्मिता का खुलकर विरोध किया। जब लेखक ने पोप से युद्धग्रस्त संसार में शान्ति स्थापित करने के उपायों पर विचार करने को कहा तो धर्म पिता ने कहा–

"आ हा ! बस एक उपाय है–क्रिश्चियन हो जाना।"

"पर पवित्र पिता !" लेखक की टिप्पणी कुछ अधिक व्यंग्यपूर्ण थी–

"पिछली दो सदियों से तो क्रिश्चियन ही खूनी लड़ाइयाँ लड़ रहे हैं। एशियाई तो उसमें जबरन खींच लिए जाते हैं। दूसरों की लड़ाइयां लड़ते रहते हैं।...वे तो ईसाइयों की ज़मीन पर ईसाइयों की हार-जीत के लिए लड़ाइयाँ लड़ते रहे हैं।"[31]

फ्लोरेंस की धार्मिक विलासिता की चर्चा करते हुए लेखक ने धर्माधिकारियों के पापाचरण की पुनः-पुनः भर्त्सना की है। इटली के सारे नगरों में किस प्रकार चित्रकारों ने प्रभु ईसा की साध्वी माता मदोना मरियम की काया में अपनी प्रेयसियों के नख-शिख लिख दिए थे, किस प्रकार वहाँ के सन्तों का अतीत पापांकित रहा है, किस प्रकार सतरंगी चादर में स्वर्ग, नरक सभी कुछ क्लासिकल सौन्दर्योपासना बनकर प्रकट हुआ था, इसका निरूपण डॉ. उपाध्याय ने किया है।[32]

सन्त सावोनारोला की मार्मिक एवं करुण गाथा प्रस्तुत करके लेखक ने फ्लोरेंस के धार्मिक आडम्बर का भण्डाफोड़ किया है। सन्त सावोनारोला को पहले धार्मिक अपराधी मानकर हल्की जलने वाली आँच में जला दिया गया था। सदियों के बाद उसे उसी धर्म का सन्त स्वीकार किया गया। सन्त सावोनारोला ने तत्कालीन धर्म-पिताओं और पोपों को धिक्कारते हुए कहा था–

"सावधान हो जाओ, फ्लोरेंस के साकिनो, कि तुम्हारे पाप का घड़ा भर गया है, कि तौबा करो अपने विलास को, प्रायश्चित करो अपने पापों का, वरना तुम्हारा नगर, तुम्हारा यह प्यारा फ्लोरेंस ढह जाएगा, अपने ही पापों के अम्बार, उनकी जलती लपटों में दब जाएगा, भस्म हो जाएगा, जैसे गोमेरा और सोदोम के नगर अपने पापों के अम्बार में दब गए थे, उनकी जलती लपटों में भस्म हो गए थे।"[33]

उपर्युक्त विवरणों से यह स्पष्ट है कि डॉ. उपाध्याय धार्मिक विडम्बनाओं को उजागर करने तथा ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में धर्म के दुरुपयोग की विवेचना में अधिक रुचि लेते रहे हैं। कहीं-कहीं उन्होंने धर्म के धनात्मक सेवा-भाव की प्रशंसा भी की है। बौद्ध धर्म से प्रेरित सम्राट् अशोक की मानव-सेवा[34] और ईसाई-मिशनरियों की भारतीय अछूतों की सेवा[35] उनकी लेखनी से प्रशंसित हुई है। ईसाई मिशनरियों के

बारे में डॉ. उपाध्याय लिखते हैं–

"यद्यपि इन लोगों का एकमात्र उद्देश्य भारतीयों को ईसाई बनाना और भारत आना अपने लिए विशेषतः रोजी का मसला हल करना है, तथापि उनकी अपनी सेवाओं से हम उनका अहसान मानने को मज़बूर हैं। समुन्दर पार से आकर स्वजनों को छोड़ ये हमारे घृणित समाज की सेवा करते हैं, जिनकी छाया-मात्र से उनका अपना ब्राह्मण अपवित्र होता रहा है, अपने ही देश में जिन्हें सनातन काल से कष्ट और कठोरता 'दाय' के रूप में मिलती रही है।"[36]

धर्म के सिद्धान्त और व्यवहार में आने वाले अन्तराल को लेखक ने बड़ी पैनी दृष्टि से समझा-परखा है। लेखक विश्वविद्यालयों, मिशनों और चर्चों में मानव-मूल्यों से सम्बन्धित भाषण देता रहा। तभी एक गिरजे में लेखक ने चोरी के नैतिक दोष पर व्याख्यान दिया। पाँच-छः दिन बाद एक चोर से लेखक की रोमांचक भेंट हुई। चोर ने अपना हवाला दिया कि वह डॉ. उपाध्याय का भाषण सुनकर चोरी करना छोड़ चुका था, लेकिन जब उसे कई दिन भूखे रहना पड़ा, कहीं काम नहीं मिला, तब वह यह सोचने को मज़बूर हुआ कि भाषणकर्ता के मुँह पर चौबीस अण्डे तोड़ दे, लेकिन वह (चोर) केवल शिकायत करके ही रह गया। इसकी प्रतिक्रिया लेखक पर इस प्रकार हुई–

"मैं अवाक् था, ...कुछ बोला नहीं, उसके कन्धे पर हाथ रखे पास के रेस्तराँ में उसे ले गया और जब उसे लिए जा रहा था, तब अनार्किस्त बकूनिन की चोरी की परिभाषा मेरे अन्तर को कचोट-कचोट ऐलान कर रही थी–चोर वह समाज-सेवक है, जो धन के मुनासिक पुनर्वितरण में सहायक होता है।"[37]

इसी प्रकार गेगिली के तट पर लेखक ने चर्च से उठता हुआ, आकश को भरता हुआ 'पर्वत का प्रवचन' जब सुना, तब उसे एक-एक वाक्य का व्यवहार उल्टा लगा। लेखक ने गेलिली के भीतर उठे हुए पर्वतों से टकराती आवाज़ सुनी–

"धन्य हैं पाक दिल : वे खुदा को देखेंगे।"

"धन्य हैं शान्ति के रक्षक : वे निश्चय खुदा की सन्तति कहलाएँगे।"

बार-बार यह आवाज़ गूँजने लगी, भीतर भी, बाहर भी–"धन्य हैं शान्ति के रक्षक।" मन बर्बस पर्वत-मालाओं को लाँघ, समुन्दर पार की दुनिया पर छा गया, जहाँ शान्ति का नाम लेने वाले कटघरों के पीछे हैं–हार्बड-फ्रास्ट, अल्वा बेस्सी, रिंग लार्डनर, सैमुएल ओर्नित्स !

तिलमिला गया। यह खुदा की रहमत है ! खुदा की रहमत या शैतान का कहर नाज़िल है ?"[38]

धार्मिक-जीवन का लेखा-जोखा प्रस्तुत करना लेखक का उद्देश्य नहीं रहा है, अपितु धर्म, मानव-जीवन में अतीत से लेकर वर्तमान तक, जहाँ-जहाँ बाधक और साधक रहा है (और लेखक के अनुसार बाधक ही अधिक रहा है), उसकी दो टूक

विवेचना लेखक ने अपने यात्रा-साहित्य में की है।

5. पारिवारिक जीवन

परिवार समाज की इकाई है। परिवार में मिली शिक्षा एवं संस्कृति बाद में समाज के विस्तृत फलक पर प्रकट होती है और समाज तथा संस्कृति का जो रूप हमारे सामने प्रकट होता है, उसकी मौलिक प्रेरणा परिवार से ही प्राप्त होती है। डॉ. उपाध्याय की दृष्टि समग्र समाज एवं समग्र संस्कृति पर पड़ी है, इसलिए पारिवारिक स्तर पर उनके यात्रा-साहित्य में विवेचन प्रायः नहीं मिलते। पूर्व और पश्चिम के सामाजिक परिवेश की अस्पष्ट झलक जो उनके यात्रा साहित्य में मिलती है, उससे केवल अनुमान लगाया जा सकता है कि अमुक समाज की पारिवारिक पृष्ठभूमि क्या रही होगी।

डेनमार्क में सरकार ने वृद्धों, बीमारों और बेकारों की सहायता के लिए अनेक उपाय किए हैं।[39] इसके अतिरिक्त इस देश में अविवाहित महिलाओं की देख-रेख और उनकी सन्तान के पालन-पोषण की समुचित व्यवस्था है।[40] इससे स्पष्ट है कि डेनमार्क में संयुक्त परिवार जैसी कोई व्यवस्था नहीं है, वहाँ पारिवारिक दृढ़ता न होने के कारण कुँवारी माताओं की संख्या अधिक है।

स्वीडन की आधुनिक नारी परिवार से जुड़ी हुई है और अनेक उत्तरदायित्व निभाते हुए भी अपनी सुन्दरता तथा मोहकता से परिवार को बाँधे रहती है–

"सुन्दरता और दक्षता स्वीड नारी की एकायत वस्तुएँ हैं। स्वीड तरुणी दिनभर ऑफिस में काम कर सकती है, फिर पार्कों में 'स्कीइंग' कर संध्या समय सुस्वादु भोजन बना सकती है। जब वह अपने सान्ध्य-वसन पहने भोजन परोसती है, तब कमलिनी से भी स्वच्छ और ताज़ा लगती है...वह आपको हरगिज़ नहीं उठने देगी। उसे स्वयं काफी भूख होती है और काफी प्यास भी। और यह प्यास स्वीडन में गंगा-जल से नहीं बुझाई जा सकती।"[41]

लेखक ने यहाँ स्वीड नारी की पारिवारिक मधुरता-मोहकता की ओर व्यंजना से संकेत किया है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में लेखक ने शोषकों के विलासी तथा शोषितों के पीड़ित-दण्डित परिवारों का उल्लेख किया है; यथा–बाबुल में पुरोहितों और पण्डों अथवा राजाओं के धार्मिक प्रपंचों में फँसकर लोग अपनी पत्नी अथवा पत्नियों को स्वयं वेश्यावृत्ति के लिए पहुँचा आते थे।[42] बंगाल और उड़ीसा में जब कभी कोई वज्रयानी शिष्य किसी गृहस्थ से उसकी पत्नी या कन्या की माँग करता था, तो वे उसे धार्मिक-अनुष्ठान मानकर अपनी श्री-वृद्धि के लिए उसे चुपचाप हाज़िर कर देते थे।[43] मिस्र के पिरामिड बनाने वाले मज़दूरों को उनके परिवारों से अलग कर दिया जाता था और उनके मासूम बच्चों को नील-नदी में फेंक दिया जाता था।[44] अमरीकी

बेड़ों ने स्वेज़ नहर के आसपास[45] तथा शंघाई के पारिवारिक ढाँचे को तोड़ दिया था और वहाँ की स्त्रियों को वेश्यावृत्ति के लिए मज़बूर कर दिया था।[46]

मिसिज़ मीदिज़ और मिस्टर मीदिज़ जो लेखक के सहयात्री हैं, पश्चिमी परिवारों के प्रतीक रूप में सामने रखे जा सकते हैं। पाश्चात्य जगत् में पति-पत्नी का सम्बन्ध भारतीय दाम्पत्य से कितना भिन्न होता है, यह इस युगल से जाना जा सकता है। मिसिज़ मीदिज़ लेखक के साथ अकेले घूमती रहती है। समुद्र-स्नान के समय लगभग नग्नावस्था में पर-पुरुष के सामने प्रकट हो जाती है। तूलों के 'ग्रांद होटल' में लेखक के सामने ही अपने पति की जंघा पर बैठ जाती है।[47] यह पश्चिम की आम संस्कृति है।

वस्तुतः लेखक की दृष्टि परिवार पर न रहकर सम्पूर्ण समाज, राजनीति एवं इतिहास पर रही है, फिर भी उसके यात्रा-साहित्य के अनुशीलन से भारतीय और पश्चिमी तथा चीनी परिवारों की तुलना करने में सहायता मिलती है। लेखक के अपने संस्कारों में उसका अपना पिरवार भी है, जिसके सदस्यों के प्रति उसका भावात्मक सम्बन्ध है। 'कलकत्ता से पीकिंग' पुस्तक में लेखक की अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि का पता चलता है। मानव के आदिम युग से सभ्यता के क्रमिक विकास तक उसके परिवार की भूमिका क्या रही है, इसका विशद् विवेचन 'सवेरा, संघर्ष और गर्जन' की कथाओं में देखा जा सकता है। यात्रा-साहित्य में तो केवल पारिवारिक जीवन के स्वरूप को संकेतित भर किया गया है। विशेषकर जहाँ-जहाँ इतिहास मुखर हुआ है, वहाँ-वहाँ सामाजिक-परिवेश के बहाने परिवार की विविध स्थितियाँ अधिक प्रकट हुई हैं।

6. कला एवं साहित्य

डॉ. उपाध्याय कला-मर्मज्ञ और साहित्य के सुधी सर्जक तथा प्रखर आलोचक के रूप में प्रख्यात हैं। प्रसिद्ध पुराविद् के रूप में उन्होंने कला-कृतियों एवं साहित्यिक होने के कारण विश्व-साहित्य का गम्भीर अध्ययन, अवलोकन एवं अनुशीलन किया है। भारतीय कलाओं—नृत्य, संगीत, मूर्ति, स्थापत्य आदि पर उन्होंने पृथक्-पृथक् ग्रन्थ-रचना की है। साहित्य के सम्बन्ध में उनकी आलोचना पुस्तक 'समीक्षा के सन्दर्भ' और 'विश्व साहित्य की रूप-रेखा' अपने में बेजोड़ हैं।

यात्रा-साहित्य में विविध स्थानों, देशों के कला-साहित्य पर विशद् विवेचन का अवसर नहीं होता है, फिर भी लेखक ने जहाँ उचित समझा है, विश्व की विविध कला-कृतियों और साहित्यिक कृतियों की समीक्षा की है अथवा उसके अवलोकन-अध्ययन के बाद अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है। यह प्रतिक्रिया प्रसंगानुकूल ही है, इसमें बलपूर्वक अपनी कला-साहित्य सम्बन्धी सूझ को लेखक ने थोपा नहीं है।

लेखक को कला-समीक्षक की पैनी दृष्टि मिली है। उसकी यात्रा में आए हुए

मन्दिर, पुरातात्त्विक अथवा ऐतिहासिक भवन, चित्र अथवा अन्य कलात्मक अलंकरण जहाँ-जहाँ भी मिले हैं, वहीं उसका कलात्मक बोध जागृत हो उठा है। पीकिंग में पिकासो द्वारा चित्रित कबूतर को देखकर लेखक का हृदय मानो स्पन्दित हो उठता है–

"संसार के महामना अनुपम पिकासो द्वारा चित्रित विशाल दूध-से डैनों वाला कबूतर पंख मार रहा था। कबूतर जो मानवता के मार्ग का प्रतीक है, जीवन के अन्तिम बीज का, राग से स्पन्दित हृदयों का, स्निग्ध पावन काम का–और उसे उस पिकासो ने चित्रित किया है–आधी सदी से विश्व में जिसकी तूलिका का साका चलता रहा है–जिसके वर्ण के सहसा फेंके छींटों से अनवरत चित्रण की नयी-नयी अभिराम शैलियाँ अभिव्यक्त होती रही हैं।"[48]

पिकासो द्वारा चित्रित अमर चित्र-कृति 'गेर्निका' की संवेदन-शीलता को लेखक ने कवि की भाँति सम्प्रेषित किया है–

"जर्मन तोपों की मार से स्पेन के युद्ध में गेर्निका का वह छोटा-सा कस्बा बरबाद हो चुका था, उसके पल्लव-पल्लव पर, हरियाली दूबों पर, कलियाई टहनियों पर, खिले फूलों पर रक्त के छींटे थे, हवा में पराग-बास चिराँयध की बू से दब गई थी, जर्मन पैरों की चाल से हवा तक सहमी हुई थी, परिन्दे आशियानों को छोड़ दूर आसमान में खो गए थे। उसी गेर्निका के चीत्कार पिकासो ने अपनी कूर्च से लिखे।"[49]

लेखक चीनी कलाओं का प्रशंसक है। चीनी इमारतों और खण्डहरों की कलात्मकता, रंग-योजना तथा सुरुचि सम्पन्नता की प्रशंसा लेखक ने यत्र-तत्र की है। पीकिंग के खण्डहर हुए महल के सिंहद्वार के कला-रूपों की व्याख्या यहाँ द्रष्टव्य है–

"सिंह, साम्राज्य शक्ति के प्रतीक हैं और जहाँ उनके पंजों तले किमखाबी ज़मीन की गेंद है, वे चक्रवर्ती शक्ति के परिचायक हैं। गेंद विश्व की गोल काया का ज्ञापन करती है।"[50]

कलात्मक कृतियों का पुनः प्रस्तुतीकरण डॉ. उपाध्याय ने मात्र एक इतिहासकार अथवा संवेदनशील दर्शक की भाँति नहीं किया है, अपितु उसकी प्राणवत्ता को द्विगुणित करके उसे नया रूप प्रदान किया है; उदाहरणार्थ–

"आसमान ने उड़ीसा की ज़मीन से पूछा–मेरे तो सूरज, चाँद और तारे हैं, तुम्हारे पास क्या है ? उड़ीसा की ज़मीन बोली–मेरे लिंगराज, जगन्नाथ और कोणार्क के मन्दिर। समुन्दर ने उठकर रत्न बिखेर दिए। आसमान चुप हो रहा।"[51]

'लाल चीन' नामक पुस्तक में लेखक ने चीनी साहित्य की प्रवृत्तियों पर विस्तार से चर्चा की है। चीन के उदारवादी, राष्ट्रवादी एवं साम्यवादी साहित्य की समीक्षा करते हुए लेखक ने चाऊ-शू-जेन के साहित्यिक अवदान को रेखांकित किया है–

"चाऊ शू जेन जो लू शुन नाम से विख्यात हुआ, आधुनिक चीनी साहित्य का पिता है। चीनी पाठकों और लेखकों पर समान रूप से उसकी सत्ता प्रतिष्ठित है। चीनी उसे गोर्की और बर्नाड शॉ की सम्मिलित मेधा का साहित्यकार मानते हैं। उसमें गोर्की का यथार्थवाद, मानवतावाद और सहृदयता समान रूप से विद्यमान थी। साथ ही उसकी कृतियों में जीवन का व्यंग्य प्रचुर मात्रा में है।...लू शुन, जिसने चीनी आधुनिक साहित्य के प्रायः सभी अंगों को अपनी कृतियों में सम्पन्न और प्रभावित किया, सन् 1936 में मरा।"[52]

जिन दिनों भारतवर्ष में सन् 1935 के बाद प्रगतिवादी लेखन का प्रारम्भ हुआ उन्हीं दिनों लगभग समान प्रवृत्तियों से सम्पन्न साहित्य-रचना चीन में हो रही थी। डॉ. उपाध्याय इस सम्बन्ध में लिखते हैं–

"1937 से चीनी जीवन और साहित्य में एक नया परिवर्तन आया। जापानी जंगबाज़ों ने चीन में शत्रु का जमकर मुकाबला किया। उसके साहित्यकार आक्रमणों के विरुद्ध संघर्ष करने लगे। साहित्य शत्रुओं के प्रतिरोध के रूप में बढ़ा। अनेक साहितयकारों ने कलम और बन्दूक दोनों धारण किए। इस काल में उपन्यास, नाटक, कविताएँ, लेख सभी युद्ध-चेतना से लिखे गए। इस दिशा में 'चेन शाऊ चू' का उपन्यास 'वसन्त का गर्जन' विशेष उल्लेखनीय है।"[53]

लेखक विदेशी साहित्य का अध्ययन करके उस पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है, साथ ही भारतीय साहित्य से उसकी तुलना भी करता है। 'मिस्टर राचेस्टर्स वाइफ' उपन्यास में एक ऐसी पत्नी की मनोदशाओं का चित्रण है, जिसका पति उसे छोड़कर चला जाता है। उसका विक्षिप्त पति जब वापिस लौटता है, तब वह उसे न चाहते हुए भी स्वीकार कर लेने के लिए तैयार हो जाती है, लेकिन विक्षिप्त पति राचेस्टर स्वयं उसे स्वतन्त्र कर देता है, और पत्नी अपने प्रणयी से विवाह कर अपना स्वतन्त्र जीवन जीती है, साथ ही राचेस्टर भी अपनी सेविका (किसान की बेटी) से विवाह करके मुक्त हो जाता है। पश्चिमी जीवन में ऐसी घटनाएँ घटित होना सामान्य बात है। लेखक 'मिस्टर राचेस्टर्स वाइफ' की तुलना यशपाल के प्रसिद्ध उपन्यास 'देशद्रोही' से करता है–

"अपनी हिन्दी में भी यशपाल ने जो अपना उपन्यास 'देश-द्रोही' लिखा है, उसमें इसी स्थिति का वर्णन है। वहाँ भी खोया पति लौट आता है, पर जब तक उसकी पत्नी अपना नया विवाह कर चुकी होती है। ऐसी स्थिति में क्या हो, इसका उत्तर देना मुझे अभीष्ट नहीं, पर यह आवश्यक है कि हमारे साहित्यकार इस प्रकार की समस्याओं को सामने रख उसका हल भी सोचें।"[54]

इसी प्रकार 'दि एक्सक्विज़िट पार्डिटा (अत्यन्त सुन्दरी पार्डिटा)–ई. बेरिंग्टन के समाजैतिहासिक महत्त्व पर विचार व्यक्त करते हुए लेखक का कथन है, कि पार्डिटा इंगलैण्ड के अठारहवीं सदी के सामाजिक जीवन को उजागर करती है। प्रिंस

ऑफ वेल्ज़ जार्ज, जार्ज तृतीय का पुत्र, जो जार्ज चतुर्थ के नाम से कालान्तर में प्रसिद्ध हुआ, इंग्लैण्ड का प्रधान मन्त्री फ़ाक्स शेरडिन, प्रसिद्ध चित्रकार गेन्सबरो, सभी पार्डिटा के रूप के पुजारी थे।[55]

पीकिंग में हुए एशियाई शान्ति सम्मेलन में लेखक की भेंट प्रख्यात तुर्की कवि 'नाज़िम हिकमत' से हुई थी। डॉ. उपाध्याय का विश्वास है कि जिन्होंने दलित वर्गों की आज़ादी का इतिहास पढ़ा है, वे नाज़िम हिकमत, पाब्लो नेरूदा, अलामिया और नज़रूल इस्लाम को नहीं भूल सकते; यद्यपि चारों कवियों के संघर्ष और परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न रही हैं।[56] नाज़िम हिकमत का प्रभाव लेखक के मन पर अधिक गहराई से पड़ा है नाज़िम की कविताओं के विषय में डॉ. उपाध्याय का कथन है–

"...कविताएँ ऐसी, जो मुर्दे में जान डाल दें।...सुना था, तनहाइयों की दीवारें कविताओं की पंक्तियों से भर गई थीं और कि जब तुर्की कवि अपनी ऊँची बोझिल आवाज़ से उन कविताओं को पढ़ता, अपनी तनहाई अपनी ही आवाज़ से भर देता, तब परिन्दों के पर फड़फड़ा उठते, पास की तनहाइयों के साथी कैदी अपनी बेड़ियाँ झनझना देते और गश्त करते खूँखार निर्भय वार्डर गश्त रोक खामोश अपनी बेबसी के आँसू पोंछ लेते।"[57]

उल्लेखनीय है कि नाज़िम हिकमत ने अंकारा और इस्तंबूल की जेलों में अपने जीवन का बहुत बड़ा हिस्सा कैदी के रूप में बिताया था।

चीन के शान्ति सम्मेलन में पिकासो द्वारा चित्रित बड़े, सफेद कबूतर को शान्ति का प्रतीक मानकर नाज़िम हिकमत ने एक सुन्दर भावपूर्ण कविता लिखी तथा पढ़ी थी उस कविता का हिन्दी-अनुवाद डॉ. उपाध्याय ने अपनी पुस्तक 'कलकत्ता से पीकिंग' में प्रस्तुत किया है–

"समान पेड़ की सैंतीस शाखाएँ
हर शाखा में सफेद कबूतर अपने पंख फड़फड़ा रहा है
माँ के दूध से सफेद डैने जिसके
ओ शान्ति के प्रतीक ! मेरे प्यारे कबूतर !
पीकिंग ने अपनी ऊँची-से-ऊँची बुर्जियाँ तुझे दे डाली हैं
ऊँची-से-ऊँची, पर तू अपना घोंसला बना।"[58]

डॉ. उपाध्याय ने अपने यात्रा-साहित्य में विभिन्न देशों की कला एवं साहित्य को मुखर किया है। कला और साहित्य, समाज-संस्कृति के सर्वाधिक प्रकट लक्षण होते हैं। डॉ. उपाध्याय द्वारा वर्णित कला और साहित्य में सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि–उनका अपना व्यक्तित्व सर्वत्र उन पर आच्छादित रहा है। प्रायः प्रतिक्रिया के रूप में उनका कला-बोध एवं साहित्यिक संस्कार जागृत हुआ है, लेकिन वह उनके यात्रा-साहित्य का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं सबल पक्ष है।

7. लोक-जीवन के विश्वास एवं जीवन-मूल्य

एक विदेशी यात्री के रूप में लेखक की इतनी गहरी पैठ किसी भी देश अथवा भू-भाग के जन-जीवन में सम्भव नहीं हो सकी है कि लोक-जीवन के विश्वासों को वह भली प्रकार जान सके। समाज-शास्त्रीय शोध के लिए यह एक अलग विषय है, किन्तु डॉ. उपाध्याय ने विश्व के विविध भू-भागों में घूमते हुए वहाँ के आम लोगों से मिल-जुलकर लोक-जीवन के ऐसे विश्वासों का उल्लेख किया है जो सामान्यतया यात्रा-साहित्य में दुर्लभ होते हैं; उदाहरणार्थ डचों को अपनी कर्मनिष्ठा पर इतना विश्वास है कि वे कहते हैं–"भगवान् ने सारी दुनिया बनाई, सिवा हालैण्ड के। हालैण्ड को सिरजा स्वयं डचों ने।"[59]

बैंगनी रंग की एक खूबसूरत मछली को देखकर डॉ. उपाध्याय को स्मरण आता है–कि ग्रीस में ऐसी ही सुन्दर मछली के बारे में लोगों का विश्वास है–कि वह रति की देवी अफ्रोदीती के साथ ही समुद्र-फेन से जन्मी थी।[60]

इसके विपरीत डॉ. उपाध्याय ने सामान्य जन के उन धार्मिक विश्वासों की चर्चा की है, जिनके कारण लोग धार्मिक आडम्बरों तथा उसके बहुविध शोषण के शिकार बन गए। जनता के लोकोत्तर विश्वास ही जनता के शोषण के कारण बने। मिस्र के जन-विश्वासों की बात उठाते हुए लेखक ने उनके धार्मिक विश्वासों के क्रमिक विकास (?) का उल्लेख किया है। प्रारम्भ में मिस्र का किसान नील-नदी की उर्वर भूमि से तीन-तीन फसलें काट लेता था, लेकिन उसके मन में प्रश्न उठे कि–रात में चमकने वाले सितारे कहाँ से आते हैं ? उसका दिल दहला देने वाली गरज़ बादलों में कौन भरता है ? नील नदी में कौन प्रतिवर्ष नियमित समय के बाढ़ लाता है कि अपना पंचांग बना लें ?[61] आदि-आदि। इन सबसे ऊपर उसके मन में प्रश्न उठा मृत्यु का ? उन सभी प्रश्नों के उत्तर दिए पुरोहितों ने। सबसे महत्त्वपूर्ण उत्तर था कि मनुष्य मरकर 'पश्चिमी पहाड़ों के पीछे' जाता है। मृत्यु के बाद के सुरक्षित और सुखी जीवन की कल्पनाएँ गढ़कर पुरोहितों ने मृत शरीरों की 'ममी' और उनकी सुरक्षित कब्रों के प्रबन्ध तथा विधान किए वे ही कब्रें बड़े-बड़े पिरामिडों में बदलती चली गईं। अमीरों में होड़ लग गई बड़े-से-बड़े पिरामिड बनाने की।

यह लोक-जीवन के विश्वास ही थे कि उड़ीसा में बड़े-बड़े मन्दिर बने और उन पर वासना-जन्य घृणित चित्र उकेरे गए। धार्मिक विश्वासों में फँसकर ही धार्मिक अगुआओं के देव-क्षेत्र-देवायतन खुली काम-क्रीडा के केन्द्र बन गए।[62] यही धार्मिक विश्वास था, जो विश्व के सभी भू-भागों में भारी उत्थान-पतन का कारण बना।

डॉ. उपाध्याय ने अपने यात्रा-साहित्य में जिन जीवन-मूल्यों को प्रकट किया है, वे जीवन-मूल्य नितान्त परम्परागत नहीं हैं, अपितु बदलते परिवेश में बदलते जीवन-मूल्यों की अभिव्यक्ति उनके लेखन में हुई है। परम्परागत जीवन-मूल्यों में

सबसे महत्त्वपूर्ण जीवन-मूल्य अहिंसा है, जिसका प्रतिनिधित्व सदा से भारत ने किया है। गौतम और गाँधी के ही उपदेश मानो प्रसारित होकर डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य के मूल-स्वर बने हैं। एशियाई शान्ति-सम्मेलन के निर्णय और युद्ध-विरोधी नीतियाँ तथा भारत की गुट निरपेक्ष नीति, जिनको डॉ. उपाध्याय ने अपने यात्रा-साहित्य में मुखरित किया है, अहिंसा के नवीन एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रसार हैं। विश्व-मानव की सुरक्षा और समृद्धि करुणा-भाव का ही परिणाम है। अमरीका और कोरिया के प्रतिनिधियों का शान्ति हेतु गले मिलना उसी करुणा-भावना का प्रसार है। लेखक के शब्दों में–

"...जब भरे दिलों से अपराध के दर्द से काँपते अमरीकन चुप थे, कहना चाहते थे कि हम नहीं हैं, जो कोरिया की ज़मीन पर आज गोले बरसा रहे हैं, उसके अस्पताल और स्कूल बरबाद कर रहे हैं, उसकी माँओं की छाती से तड़पते बच्चों को खींच, कंस की बर्बरता से पटक रहे हैं।"[63]

अमरीकन प्रतिनिधियों के भाव को समझकर ही कोरिया के प्रतिनिधियों ने समझ लिया था कि सचमुच वे नहीं हैं–अमरीका के जंगबाज़, जिनके लिए इंसान की मिट्टी और बरसात की मिट्टी में कोई फर्क नहीं और जो कि अंकिल सेम की औलाद नहीं, जिसके खूनी पंजों ने कोरिया की इंसानियत पर चोट की है। डॉ. उपाध्याय को इन दो विरोधी देशों के प्रतिनिधियों के स्नेह-मिलन से अनुभव हुआ–जैसे पुरअसर बिलखती मासूम मानवता पर माँ के प्यार का हाथ पड़ गया था और सारी जनता भरी आँखों से, भीगी पलकों से दृश्य को निहार रही थी। उसके गाल गीले थे, उसका कण-कण आर्द्र हो चला था।[64]

यही प्रेम, अहिंसा, करुण, मैत्री, मानवता और भ्रातृत्व-भाव डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में अभिव्यक्त जीवन-मूल्य है। लेखक अपनी समस्त यात्राओं में मानो इन्हीं मूल्यों से अभिप्रेरित होकर विश्व-भ्रमण करता रहा है। इसीलिए यूगोस्लाविया में लेखक सम्राट् अशोक की करुण-भावना, विश्व-मानवता का परिचय देता है।[65]

पूर्व और पश्चिम के जीवन-मूल्यों में बहुत अन्तर है, उनके आचरण-व्यवहार सर्वथा विपरीत हैं। लेखक न्यूयार्क में नये वर्ष के उपलक्ष्य में हुए समारोह की याद करता है, जिसमें पियक्कड़, उनका फूहड़पन, उनकी गालियाँ और अगली प्रातः में हज़ारों की संख्या में पियक्कड़ों के मरने की खबरें उस नव-वर्ष-रात्रि की प्रमुख बात रही इसके विपरीत चीन की संयत भीड़ थी, जिसमें लोगों को एक-दूसरे का ख्याल था, जहाँ उत्साह संयम की रेखाएँ कभी पार नहीं कर पाता था।[66]

डॉ. उपाध्याय की दृष्टि में एक ओर पश्चिम की नारी है, जो अपनी हिम-ध्वल आकृति में काम-क्रीड़ाओं का उद्दाम-आवेग भरे हुए है, जो होटलों में चेम्बर-मेडों, वेट्रेसों का काम करती है, रेस्तरां में बार-मेडों और साकियों का काम करती है और फिर रात के कैबरों में अपना रूप बेचती हैं, जो रूपाजीवा है, जो डहकती डाल पर

कूकती कोयल है, जो ज़िन्दगी की पहली-दूसरी-तीसरी पहर के साए से झाँकती जाँघों पर बेशर्मी से उछलती हुई सुन्दरी है, जिसके नख-शिख पर मृत्युगामी हाथ घूमते रहते हैं,[67] जो चटकती कलियों के बीच प्रणयी से मुँह जोड़े चुम्बन की ध्वनि से वातावरण को मुखरित करती है;[68] दूसरी ओर उनकी दृष्टि में चीनी नारी है, जिसके बारे में वे लिखते हैं–

"आज अगर एक शब्द में मुझसे पूछो कि पीकिंग के वर्तमान जीवन को प्रतीकतः आलोकित करने वाला चिह्न क्या है, तो बस एक ही शब्द में उत्तर दूँगा–पीकिंग की नारी। और नारी वह लिज़लिज़ी घिनौनी, चमकते रेशम की गाऊन पहिने नहीं, जिसके पैर लँगड़ी साम्राज्ञी ने कभी लोहे के जूतों से जकड़ दिए थे, बल्कि नारी ऐसी जो आज बवण्डर पर चढ़ तूफान को राह बताती है।"[69]

चीन की सामान्य नारी को भी अपने स्वतन्त्र-साम्यवादी देश के प्रति अभिमान है। चीन की एक मज़दूर लड़की जहाँ अपने देश की स्वतन्त्रता, समानता एवं प्रभुसत्ता के प्रति जागरूक है, वहीं दूसरी मज़दूर लड़की लेखक से दुभाषिए के माध्यम से कहती है–

"कह दो इनसे कि शान्ति के प्रेमी सब एक परिवार के हैं।"[70]

पूर्व और पश्चिम के जीवन-मूल्यों की तुलना के लिए दोनों की गोलार्धों की नारी की स्थिति को मानदण्ड माना जा सकता है। वैज्ञानिक-आविष्कारों के प्रयोग की दृष्टि भी दोनों ही गोलार्धों में सर्वथा विपरीत है। इसके मूल में भी वहाँ के पृथक्-पृथक् जीवन-मूल्य ही कार्य करते हैं। डॉ. उपाध्याय ने विविध सन्दर्भों में पूर्व और पश्चिम को तौलकर देखा है; उदाहरणार्थ–

"आतिशबाजी चीनियों की अपनी चीज़ है। उन्होंने बारूद की खोज की, जिसका इस्तेमाल पश्चिम के राष्ट्रों ने ईसा की राह छोड़ शैतान-परस्ती में किया– पश्चिम ढलते सूरज की दिशा है। वेद की आवाज़ है–'मा मा प्रापत्प्रतीचिका' पश्चिम पतन का मार्ग है, मरीचिका का, उसमें न गिरो।"[71]

पश्चिम विशेषकर अमरीकी जीवन भाग-दौड़ का जीवन है। व्यस्तता-चुस्ती-फुर्ती अथवा यान्त्रिकता अमरीकी जीवन-मूल्य है। लेखक की टिप्पणी है, अपितु लेखक का प्रश्न है–

"लोग इतनी तेज़ी से चारों ओर भागे क्यों जा रहे हैं ? इमारतें वही हैं, व्यवसाय वही हैं, काम करने वाले वही हैं, नगर वही हैं, फिर इतनी भगदड़ क्यों है ? पूछता है–अज़नबी।"[72]

वस्तुतः लेखक के अपने जीवन-मूल्य हैं, जो उसके सम्पूर्ण यात्रा-वर्णनों में प्रतिबिम्बित हुए हैं। अप्रत्यक्षतः वे ही भारतीय जीवन-मूल्य हैं। शान्ति, करुणा, मैत्री, अहिंसा, मानवता, सौन्दर्य-बोध, पूर्व और पश्चिम के जीवन-मूल्यों के अन्तर डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में विशेष रूप से लक्ष्य किए जा सकते हैं। भारतीय

जीवन-मूल्यों के प्रभाव-स्वरूप ही लेखक कबीर जैसी विरागमयी मुद्रा में दृष्टिगत होता है। वह संसार के वैभव, अत्याचार और अनाचार तथा शोषण से उत्पन्न समृद्धि को नश्वर दिखाते हुए मानो कबीर की ही प्रवृत्ति-निवृत्ति का सन्देश देता है। तैमूर लंग का मकबरा देखकर लेखक वैरागी बनकर सोचता है—कि, जिस तैमूर ने दुनिया जीती थी, दुनिया जिसके नाम से काँपती थी, वही तैमूर अब सो रहा है—बेखबर वह जानता नहीं कि उसके मकबरे पर शेरों और छिपकलियों के दरबार होते हैं। तैमूर की भी संसार जीतने के बाद भी ज़मीन, बस उतनी ही अपनी साबित हुई, जितनी उस कब्र में है, आज जिसमें वह बेखबर सोया हुआ है, और चाहे उसकी रूह इसे न कबूले, मेरा दावा है, वह कयामत के रोज़ भी न उठेगा।[73]

यह स्पष्ट है कि डॉ. उपाध्याय ने अपने यात्रा-साहित्य में सभ्यता और संस्कृति के विविध रूपों का चित्रण एक बड़े फलक पर किया है; लेकिन सभी चित्रणों में लेखक की अपनी सामाजिक-राजनैतिक एवं ऐतिहासिक प्रतिबद्धता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती रही है। भारतीय गणतन्त्र के अपने नये परिवेश, नये अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, उसकी गुटनिरपेक्ष नीति, शान्ति के लिए उसके प्रयास, विश्व-मानवता के प्रति भारत की करुणा, मैत्री तथा युद्ध-विरोधी अवधारणाएँ प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त हुई हैं। तत्कालीन विश्व की सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों में भारत की क्या भूमिका थी, लेखक के यात्रा-साहित्य में यह सुगमता से जाना जा सकता है। भारतवर्ष और एशिया के अन्य देशों की अपेक्षा पश्चिम का समाज और संस्कृति अनेक अर्थों में भिन्न है, इसकी पहचान भी हमें डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य के अनुशीलन से सहज ही हो जाती है।

सन्दर्भ

1. गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास; डॉ. भगवतशरण उपाध्याय; उपोद्घात
2. भारतीय संस्कृति के स्रोत; डॉ. भगवतशरण उपाध्याय; पृ. 1
3. भारतीय संस्कृति के स्वर; महादेवी वर्मा; पृ. 19
4. सागर की लहरों पर; पृ. 29
5. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 3
6. वो दुनिया; पृ. 2
7. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 135
8. वही; पृ. 136
9. वही; पृ. 119
10. घूमने का राज; पृ. 22
11. वही; पृ. 24
12. आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य; डॉ. हरदयाल; पृ. 160
13. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 161
14. वही; पृ. 12

15. वही; पृ. 11
16. सागर की लहरों पर; पृ. 217
17. लाल चीन; पृ. 118
18. वही; पृ. 119
19. वही; पृ. 119
20. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 34
21. वही; पृ. 32
22. बुर्जियों के पीछे; पृ. 32
23. लाल चीन; पृ. 101
24. वो दुनिया; पृ. 173
25. सागर की लहरों पर; पृ. 29
26. लाल चीन; पृ. 119
27. बुर्जियों के पीछे; उड़ीसा के मन्दिर; पृ. 10
28. वही; पृ. 21
29. सागर की लहरों पर; पृ. 225
30. वो दुनियाँ; पृ. 193
31. वही; पृ. 207
32. घूमने का राज; पृ. 257
33. वही; पृ. 257
34. वही; पृ. 190
35. सागर की लहरों पर; पृ. 29
36. वही; पृ. 29
37. घूमने का राज; पृ. 60
38. वो दुनियाँ; पृ. 235
39. घूमने का राज; पृ. 115
40. वही; पृ. 117
41. वही; पृ. 118
42. लाल चीन; पृ. 119
43. बुर्जियों के पीछे; पृ. 21
44. वही; पृ. 29
45. सागर की लहरों पर; पृ. 231
46. लाल चीन; पृ. 118
47. घूमने का राज; पृ. 282
48. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 120
49. वही; पृ. 121
50. वही; पृ. 90
51. बुर्जियों के पीछे; पृ. 13
52. लाल चीन; पृ. 128
53. वही; पृ. 129

54. सागर की लहरों पर; पृ. 216-17
55. वही; पृ. 217
56. घूमने का राज; पृ. 212
57. वही; पृ. 213
58. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 121
59. घूमने का राज; पृ. 138
60. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 37
61. बुर्जियों के पीछे; पृ. 25
62. वही; पृ. 21
63. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 129-30
64. वही; पृ. 129-30
65. घूमने का राज; पृ. 190
66. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 142
67. घूमने का राज; पृ. 177
68. वही; पृ. 181
69. वही; पृ. 146
70. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 146
71. वही; पृ. 114
72. घूमने का राज; पृ. 68
73. वही; पृ. 235

5

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में उनके व्यक्तित्व का आकलन

साहित्यकार अपनी कृति में सदा उपस्थित रहता है। उसके व्यक्तित्व के आन्तरिक तथा बाह्य पक्ष प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में उसकी कृति में उद्घाटित होते रहते हैं। यात्रा-साहित्य और आत्म-कथा जैसी आधुनिक आत्मपरक विधाओं में तो लेखक के व्यक्तित्व का गोपन दुष्कर ही नहीं असम्भव भी है।

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप सर्वत्र देखी जा सकती है। अपने प्रख्यात उपन्यास 'कालिदास' के एक प्रसंग में डॉ. उपाध्याय ने कृति और कृती के सम्बन्ध में कालिदास के मुख से यह कहलवाया है कि कालिदास अपनी रचनाओं में सर्वत्र छाये रहे हैं। कालिदास अपनी प्रेयसी कौमुदी से कहते हैं–

"कृती निश्चय अपनी कृति से सर्वथा विलग नहीं हो सकता। किसी-न-किसी अंश में किसी-न-किसी भाव-तत्त्व से वह अपनी कृति से जुड़ा रहता है। उसकी अनुभूति बाह्य उपकरणों पर अवलम्बित होकर भी बहुधा आत्मपरक आत्मानुभूति हो जाती है।"[1]

यह प्रसंग कालिदास एवं मेघदूत के नायक यक्ष के चरित्र सम्बन्धी साम्य को लेकर उठाया गया था और यह तथ्य जितना कालिदास के सम्बन्ध में सच है, उतना ही डॉ. उपाध्याय के सम्बन्ध में भी सार्थक है। विशेषकर अपने यात्रा-साहित्य में वे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में सर्वत्र विद्यमान रहे हैं। कहीं-कहीं तो आत्मकथा के स्तर पर वे अपने जीवन का पर्यालोचन करते पाए जाते हैं। 'सागर की लहरों पर' नामक यात्रा-साहित्य कृति में डॉ. उपाध्याय आत्म-कथा की शैली में ही अपने बीते जीवन पर दृष्टि डालते हैं–

"बीवी की बीमारी, पटने का अस्पताल, इटली का सेनेटोरियम, काशी विश्वविद्यालय की मुलाजमत, लखनऊ म्यूजियम की नौकरी, मर्म पर चोटें, बीवी की लौटी बीमारी, स्तीफा, लखनऊ छोड़ना, पटने का कठिन दर्द भरा जीवन, जो पत्नी

की मृत्यु के साथ समाप्त हुआ; ज़िन्दगी के ये आँकड़े उलझे धागों की भाँति दिमाग में अटके रहे और मैं उनके सिरे पकड़े सुलझाता रहा।'[2]

डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य के अनुशीलन से उनके व्यक्तित्व की जो विशेषताएँ उभरती हैं, उनकी विवेचना निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर की जा सकती है—

सौन्दर्य-बोध

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय का सौन्दर्य-बोध अत्यन्त कलात्मक, शृंगारिक एवं वस्तुनिष्ठ है। सौन्दर्य-बोध के आधार पर डॉ. उपाध्याय को मार्क्सवादी, साम्यवादी या प्रतिक्रियावादी कुछ भी नहीं कहा जा सकता। विश्व-भ्रमण के कारण उनका कलाबोध अत्यन्त व्यापक था और कालिदास के साहित्य में विशेष अभिरुचि के कारण सौन्दर्य-बोध का उत्कर्ष उन्हें प्राप्त हुआ। उपाध्याय जी के यात्रा-साहित्य में सौन्दर्य-चित्रण के तीन पक्ष देखे जा सकते हैं—मानव सौन्दर्य, प्रकृति सौन्दर्य एवं वस्तुगत सौन्दर्य।

मानव-सौन्दर्य के अन्तर्गत हम देखते हैं कि नारी देह के सपाट सौन्दर्य चित्रण में डॉ. उपाध्याय का मन बहुत रमा है और नारी-सौन्दर्य के चित्रण में लेखक के मन में नैतिकता-अनैतिकता के प्रश्न नहीं उठते—स्वयं लेखक ने स्वीकार किया है—

"पत्थर की मूर्तियों को नंगी देखते रहने का अभ्यास होने से निरर्थक नैतिकता के स्वांग का व्यवधान न था। निरन्तर कसती-खुलती, सतत संकुचित-शिथिल होती रेखाएँ अनिमेष देखता रहा। रेखा छन्दस् की यह प्रक्रिया, अनन्त भंगों का वह निर्मम उल्लास, साँचे में ढले निर्दोष अंगों का वह अथक विन्यास देर तक आँखों का कौतुक बना रहा।"[3]

बोर्न होल्म में समुद्र तट पर मिसिज़ रिचर्ड के निर्वसित अपरोक्ष तन-मानस की शोभा का वर्णन करते हुए लेखक विह्वल हो उठता है—

"छरहरी, सलोनी, कोटिमत्त दाँतों वाली, पके कदम्ब फल के से लाल होठों वाली, दुबली कटि वाली, डरी मृगी की-सी आँखों वाली, गहरी नाभि वाली, स्तनों के भार से तनिक आगे को झुकी, गरज की युवतियों के प्रसंग में जो कुछ भी सृष्टि में सुन्दर है, उसकी निचोड़-सी—मेघदूत की नायिका।"[4]

अपनी समुद्र-यात्रा में लेखक ने जहाज़ के बनावटी जाली वाले तालाब में स्नान करने वाले पुरुषों के सुडौल सौन्दर्य का चित्रण करने में भी उतनी ही तन्मयता दिखाई है—

"...प्रायः दस फुट की गहराई में जवान कूद और तैर रहे थे। अधिकतर इनमें कर्मचारी थे, जिनका खुला शरीर देखते ही बनता था। उनके शरीर पर पौरुष खेलता था। सुडौल शक्ति-परिचायक जब एक-दूसरे पर रपट पड़ते थे तब लगता जैसे दो

साँड टकरा पड़े हों।"[5]

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय छायावादी कवियों के समकालीन रहे हैं, इसलिए उनके यात्रा-साहित्य में प्रकृति का सौन्दर्य-चित्रण देखकर लगता है कि मानो छायावाद की किसी कविता का आनन्द मिल रहा हो। प्रकृति में नारी सौन्दर्य का आरोप और काव्यात्मकता का निखार यहाँ दर्शनीय है—चीन के प्राकृतिक दृश्य का निरूपण प्रस्तुत है—

"पहाड़ और जंगल, खेत और मैदान, नदी और झील नीचे बिखरे पड़े हैं। फैले मैदानों में हरी घास और ऊँचे पौधों के बीच पानी की धारा चाँदी-सी चमक रही है। लगता है प्रकृति नहा-धोकर बाल बिखेरे चमकती माँग काढ़े खड़ी है। उसकी अभिराम साड़ी दूर तक फैली पहाड़ों और जंगलों पर अपने आंचल का साया डालती चली गई है।"[6]

प्रकृति चित्रण में मानवीकरण की यह भंगिमा निश्चय ही काव्य-शैली के निकट है। प्रकृति पर व्यक्तिगत भावों के आरोपण का एक उदाहरण और—स्विट्ज़रलैण्ड की प्रकृति अप्रैल के महीने में कितनी मोहक हो जाती है—कि "खुले तो नीला आसमान और पीली धूप, और बरसे तो बर्फ, बहे तो शीतल बयार जैसे गलते हिम को चूमती चली जा रही हो।"[7]

वस्तुगत सौन्दर्य की मोहकता भी कम नहीं है। राजनीतिक, सामाजिक वतावरण का चित्रण करते हुए भी लेखक अपनी सौन्दर्य दृष्टि, भाषा सौष्ठव एवं वर्णन कौशल का सहज बोध नहीं खोने देता। पीकिंग में दीपावली की रात का सौन्दर्य यहाँ द्रष्टव्य है—

"होटल की आठवीं मंजिल पर जाकर देखा नगर लाखों-करोड़ों बिजली की बत्तियों से जगमगा रहा था। मंचुओं की सत्ता की अमावस्या पर वर्तमान चीनी महान् प्रजातन्त्र की विभावरी इठला रही थी। स्वर्गीय शान्ति का द्वार अपनी हजारों दीपिकाओं के साथ अधर में टिका-सा प्रतीत होता था और दूर की अनेक अट्टालिकाएँ अपने शिखर दीपों से आकाशगंगा में अनन्त नीहारिकाएँ सिरज रही थीं।"[8]

कोगेनहागेन की प्रसिद्ध कलाकृति मरमेड को देखकर लेखक की सौन्दर्यानुभूति, प्रतिक्रिया और कलात्मकता मुखर हो उठती है—

"प्रेमोन्माद में सागर-तीर की चट्टानों पर बैठी मरमेड, काली धातु की बनी, जिसका निर्माण, मत्स्य की काया जैसे तरल सागर के जल की ओर बही जाती है और जो अपने कमनीय उत्तरार्द्ध का बल दाहिनी भुजा पर डाले बाएँ हाथ से दाहिनी भुजा छूती चिन्तामग्न बैठी है।"[9]

डॉ. उपाध्याय का सौन्दर्य-बोध उनके समस्त यात्रा-साहित्य पर आच्छादित हैं इसी वैयक्तिक आच्छादन के कारण उनका यात्रा-साहित्य अधिक रोचक और

ग्राह्य बन गया है। लेखक का सौन्दर्य-बोध और कला-प्रेम उसके जीवन की सारी परुषता और सारी कुरुचि को नष्ट कर देता है तथा उसका प्रकाश चेतनता के अन्तरंग को आलोकित करता है।[10] साथ ही लेखक यह मानता है कि 'कुमार सम्भव' में कालिदास की व्याख्या के अनुसार सौन्दर्य दर्शन से ही पवित्रता जगाता है और कल्याण को चरितार्थ करता है।[11]

देश-प्रेम

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय विश्वभर में भ्रमण करते रहे हैं; मार्क्स, गांधी, लेनिन के विचारों से प्रभावित रहे। विश्व के अन्य देशों की व्यवस्था, सत्ता एवं प्रगति की खुलकर प्रशंसा की परन्तु उनके लेखक के भीतर एक भारतीय आत्मा विराजित थी जिसने उनमें देश-प्रेम की भावना से आप्लावित रखा। भारत के पुरातात्त्विक, ऐतिहासिक एवं साहित्यिक गौरव के प्रति हृदय से निष्ठावान् भगवतशरण भारतीय जीवन-शैली, दर्शन चिन्तन और उसके अतीत के प्रति गौरवान्वित होते थे। भारत की सांस्कृतिक चेतना उन्हें देश-प्रेम से निरन्तर जोड़े रही। सवेरा, संघर्ष और गर्जन की भूमिका में उन्होंने भारतीय संस्कृति की आत्म-त्याग भावना का भाव आत्मसात् करते हुए लिखा है–

"जिस संस्कृति की प्रेरणा से ये कहानियाँ लिखीं गईं स्वयं उसी की घोषणा है,–

'अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।'[12]

परदेश में यात्राओं के दौरान लेखक को भारत और भारतीय परिवेश कभी विस्मृत नहीं हुआ है, उसके सम्पूर्ण चिन्तन पर भारत और भारतीयता आच्छादित रही है।

अमरीका पहुँचने पर अमेरिका की धरती को देखते ही लेखक को भारत-भूमि की याद इस प्रकार आह्लादित कर देती है कि वह कवि हो उठता है–

"दूर बाएँ अमेरिका का भूमि-तट दिखाई पड़ रहा था। इसी भूमि को अन्यत्र जब महीनों के तूफान और सामुद्रिक खतरों के बाद 1492 में क्रिस्टोफर कोलम्बस ने नाविकों को देखा था, तब "भूमि-भूमि" ! कह चिल्ला उठे थे। हमारे अमेरिकन सहयात्री विशेषकर रेवरेण्ड जेम्स भी बालवत उस भूमि को देख विभोर हो रहे थे और मुझे उस धूमिल भू-तट पर भारत की भूमि झाईं-झाईं चमक रही थी; बम्बई और इलाहाबाद की भूमि, दूर उजियार की।"[13]

लेखक ने कहीं भी अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करते हुए स्वदेश प्रेम का प्रदर्शन नहीं किया है, कहीं-कहीं तो विदेशों की तुलना में भारत की व्यवस्थाओं और परम्पराओं पर गहरी चोट भी की है, परन्तु अपने देश की सांस्कृतिक गरिमा कलाओं तथा ज्ञान की परम्पराओं का लेखा-जोखा करते हुए लेखक अनेकशः विह्वल होता

हुआ दिखाई देता है। इस विह्वलता में कहीं भी दिखावा नहीं है। लेखक को इस बात का अभिमान है कि वह भारतीय है और यह तथ्य लेखक के यात्रा-साहित्य के अनुशीलन से स्वतः प्रमाणित हो जाता है।

यूगोस्लाविया में एक बूढ़ा व्यक्ति जब लेखक से कहता है कि वह (लेखक) बहुत खूबसूरत है तब लेखक की प्रतिक्रिया बड़ी रोचक और भावात्मक प्रतीत होती है—"कहाँ मेरा रूप-रंग, कहाँ उस सज्जन की वह बात ! पर बात वह उस चींटी की थी, जो फूल के साथ देवता के सर चढ़ जाती है। भारतीय होना ही क्या इस सद्भावना के लिए काफी नहीं था।"[14]

भारत के वर्तमान में ही नहीं इतिहास में भी लेखक निरन्तर भारत की गरिमा, शान्तिप्रियता और विश्वबन्धुत्व की उदार भावनाओं के प्रति जागरूक रहा है। अपने एक भाषण में लेखक ने मकदूनिया के सिकन्दर की दिग्विजय के सन्दर्भ में बताया कि उसके एक हाथ में तलवार थी और दूसरे में आग। उसने ग्रीस, सीरिया, मिस्र, ईरान तथा भारत के सिन्ध-पंजाब प्रान्त जीते, पर दो पीढ़ी बाद भारत के एक शालीन सम्राट् ने उसका बदला चुकाया। उसने पाँचों ग्रीक देशों में आपकी मकदूनिया में दवाएँ बँटवाईं। आपने हमारे यहाँ तलवार और आग भेजी और अपने आपको जीने के ज़रिए भेजे। आपके घावों के लिए मरहम भेजे, दवाएँ भेजीं।[15]—लेखक का संकेत सम्राट् अशोक की उदारता और विश्व-मानवता की ओर था।

डॉ. उपाध्याय ने अपने यात्रा-साहित्य में देश-प्रेम सम्बन्धी निबन्ध नहीं लिखे हैं और न ही स्वयं को देश-प्रेमी प्रमाणित करने का प्रयास किया है, पर सर्वत्र यह लगता रहा है कि लेखक विदेशों में अपने देश का उसकी संस्कृति-सभ्यता एवं इतिहास का मानो प्रतिनिधित्व करता रहा है। लेखक के देशप्रेमी स्वभाव का ही परिणाम था कि उसने अत्यल्प अवस्था में राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया और बाद में सन् 1952 में एशियायी शान्ति सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व किया।

यायावरी वृत्ति

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय में स्वाभाविक यायावरी वृत्ति थी। उन्होंने अपने बलबूते पर विश्व भ्रमण किया था। प्रो. कमलारत्नम् लिखती हैं—"उनके ज्ञान-वैभव और भारतीय संस्कृति को उनके विश्व-भ्रमण ने निखार दिया। कौन-सा ऐसा देश था, जो उन्होंने नहीं देखा था, जिसकी सैर उन्होंने शुद्ध अपने बलबूते पर नहीं की थी।"[16] कई बार बिना उद्देश्य के भटकने में लेखक को आनन्द मिलता है—

"घूमने का राज़ तब है, जब घूमने वाला अकेला हो, देश अनजाना हो, लोग अनजाने हों, पैसा पास न हो।"[17]

घूमने में ऐसी फक्कड़ता लेखक के स्वभाव में व्याप्त है कि न धन से लगाव होता है, न लोगों के साथ बसेरा करने की इच्छा होती है। बस, जो क्षण

आनन्दातिरेक में गुज़र जाते हैं, वे ही लेख की धरोहर बन जाते हैं। धन की बरसात होती है, लेखक की मेधा और वक्तृत्व शक्ति के कारण, फिर भी लेखक खाली हाथ हो जाता है—अपनी उदारता के कारण। बहते जल की तरह उसका व्यक्तित्व निखरता है—उसमें कहीं सड़ाँध पैदा नहीं हो पाती। इसीलिए लेखक में महाराजाओं और फकीरों का-सा व्यक्तित्व एक साथ मिल जाता है—

"जब चला एथेन्स से मिस्र की ओर, और बिलों का भुगतान कर हज़ारों-हज़ारों नोट होटल के वेयरों और हालपोर्टर को वख्शीश में दिए तब एक ने हल्के से पूछा—"माफ कीजिएगा, पर आप क्या कोई भारतीय महाराजा हैं ?"

"नहीं, महाराजा तो मिट गए, मैं घुमक्कड़ हूँ ज़िन्दा।"[18]

अपनी चीन यात्रा में नौ घण्टे खुली हवा से अलग जहाज़ से उड़ता रहा इसलिए ऊब गया। एक अनजाने देश में उस ऊब को मिटाने के लिए इधर-उधर भटकते हुए लेखक ने अपनी इसी घुमक्कड़ी वृत्ति का परिचय दिया है—

"हवाई यात्रा सुखद रही पर नौ घण्टे खुली हवा से अलग जहाज़ के भीतर बन्द रहने से जी ऊब गया। खाड़ी के तट पर दौड़ चलने की इच्छा बलवती हो उठी। होटल से तीर की तरह भागा चौड़ी सड़क पर चल पड़ा चुपचाप बिना पथ-प्रदर्शक के, बगैर नक्शे के।"[19]

नास्तिकता

ईश्वर के अस्तित्व के प्रति नकारात्मक रुख लेखक में मार्क्सवादी चिन्तन से प्रभावित होने के कारण आया है। यह विचित्र बात है कि डॉ. उपाध्याय एक ओर तो वेद, उपनिषद् बौद्ध दर्शन से सम्बन्धित ग्रन्थों का अनुशीलन करते रहे और महाकवि कालिदास पर गहरी निष्ठा से महत्त्वपूर्ण शोध-कार्य किया तथा दूसरी ओर ईश्वर के अस्तित्व को नकारते रहे। यही नहीं, अपने कालिदास उपन्यास में वे कालिदास के प्रति न्याय करते हुए उन्हें पूर्ण आस्थावान् एवं शिव का परम भक्त घोषित करते हैं। जब कालिदास उज्जयिनी के महाकालेश्वर मन्दिर में अपनी ही काव्य रचना "या सृष्टिः सृष्टुराद्या..." का श्रवण करते हैं, तो ऐसा लगता है मानो कालिदास के स्थान पर स्वयं डॉ. उपाध्याय ही बैठे हों।[20] वैसे भी कालिदास की सम्पूर्ण कथा में लेखक का अपना व्यक्तित्व झाँकता रहा है। उल्लेखनीय यह है कि लेखक ने अपने यात्रा-साहित्य में ईश्वरीय सत्ता का निषेध किया है। डॉ. उपाध्याय ईश्वर में विश्वास नहीं रखते थे उनका दृढ़ मत था कि ऐसी कोई शक्ति है ही नहीं। उनको संस्कारों के नाम पर विभिन्न उत्सवों में भी, उनकी रुचि नहीं थी।[21] उन्हें यह दृष्टि मार्क्सवादी चिन्तन के परिणामस्वरूप मिली थी। अपने अनीश्वर वादी चिन्तन को लेखक ने यत्र-तत्र अपने यात्रा-साहित्य में भी प्रस्तुत किया है। अपनी अमेरीका यात्रा में लेखक ने अपने सहयात्रियों के समक्ष ऐसे तर्क रखे हैं जिनसे

यह स्पष्ट होता है कि लेखक अनीश्वरवादी था–

"फिर मैंने संसार के उस घोर मिथ्यावाद भगवान् पर आघात किया। मैंने सोचा तर्क और समझ के आधार पर अपना धर्म और जीवन अवलम्बित समझने वाले साधु मिशनरियों को गुमान भी नहीं कि जब अपना सारा ज्ञान वे कृत्रिक और मिथ्या ईश्वर के चरणों में धर देते हैं, तब उनका सारा तर्क विडम्बना बन जाता है। मैंने कहा–"संसार का सबसे बड़ा अन्धविश्वास सबसे पुराना भी है और सब जातियों के समान रूप से हावी भी। और वह घोर अन्धविश्वास खुदा है।"[22]

जब लेखक के सहयात्री रेवरेण्ड जेम्स ईश्वर को जगत्पिता आदि कहते हैं, तब लेखक तर्क प्रस्तुत करते हुए ईश्वर के अस्तित्व को नकार देता है। लेखक कहता है–

"संसार कितने कष्ट में है, रहा है, यहाँ जिस मात्रा में अन्याय, दारिद्र्य, अत्याचार, शोषण, बेईमानी और निर्दयता होती रही है, उसे देखते यह विश्वास करना असम्भव है कि कोई खुदा अपनी प्यारी औलाद को इस प्रकार पिसते देखकर भी चुप रह सकता है। आखिर उसकी रहमत कहाँ बरसती है ? श्रीमानों पर अत्याचारियों और अन्यायियों पर क्यों ? ईमानदारों, गरीबों, सर्वहाराओं पर भला क्यों नहीं ? यदि तर्क की युक्तियों को अलग भी रख दें तब भी इन बातों से भगवान् की असिद्धि हो जाती है।"[23]

यहाँ लेखक के विचारों को काटने अथवा उनका समर्थन करने का कोई अर्थ नहीं है, प्रमुख बात यही है, कि डॉ. उपाध्याय अपने विश्वासों से घोर नास्तिक थे। यह बात उनके यात्रा-साहित्य में भी स्पष्ट हुई है। वे धर्म, जाति, वर्ण, वर्ग के बन्धनों से मुक्त मानव की शक्ति पर विश्वास करते थे ईश्वर पर नहीं।

अध्ययनशीलता

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के व्यक्तित्व पर कालिदास सर्वत्र छाये रहते हैं। उनके यात्रा-साहित्य का अनुशीलन करने से यह बात प्रमाणित हो आती है। उनको साहित्य-जगत् मूलतः 'इण्डिया इन कालिदास' तथा 'कालिदास का भारत' ग्रन्थों से जानता है। 'कालिदास के सुभाषित' और 'कालिदास' उपन्यास उनकी ख्याति के लिए विशेष गण्य ग्रन्थ हैं। यह और बात है कि कालिदास के काल निर्धारण एवं जन्म-स्थान को लेकर डॉ. उपाध्याय तथा अन्य इतिहासकारों में वैचारिक मतभेद रहा, पर इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता कि कालिदास-साहित्य ने डॉ. उपाध्याय को पूरी तरह प्रभावित किया था। 'कालिदास' उपन्यास का नायक कवि कालिदास जब उज्जयिनी की वीथियों में भटकता-घूमता है, तब लगता है मानो स्वयं डॉ. उपाध्याय अपनी कथा कह रहे हैं। उनका सम्पूर्ण भाव-जगत् सदा ही कालिदास से प्रभावित रहा है। प्रो. कमलारत्नम् ठीक ही लिखती हैं, कि जब वे भाषण करते

थे—तब—

"कालिदास के रथ के घोड़े और हाथी जब कश्मीर और अफगानिस्तान की केसर की क्यारियों में लौटकर थकान मिटाते और अखरोट की छाल से कपोल रगड़कर कंडूयन करते, उस समय लगता मानों भाषणकर्ता भगवतशरण स्वयं रघु का घोड़ा, रघु का हाथी है, जो उन सुदूर उत्तर पश्चिमी वनप्रदेशों के सुरभित वातावरण में निर्बाध विचरण कर रहा है।"[24]

अपनी फ्रांस यात्रा में डॉ. उपाध्याय अपने सहयात्री दम्पति श्री एवं श्रीमती मीदिज़ के साथ अचानक कालिदास के काव्य प्रसंगों में खो जाते हैं और मिसिज़ मीदिज़ को अपनी अन्यमनस्कता का हवाला देते हुए बताते हैं—"मेरा मन जा लगा था—मिसिज़ मीदिज़, कालिदास के कुमार सम्भव के उस प्रसंग पर जहाँ हिमालय की कन्दराओं में जब किन्नरों के जोड़े रमण करते हैं तब उनकी अनीति का परिहास कर प्रकृति उनके कृत्य पर परदा डाल देती है, बादलों की झिलमिल टाँग कन्दरा का द्वार ढक देती है।"[25]

और फिर डॉ. उपाध्याय प्रायः कालिदास का वह श्लोक बिना किसी अर्थ प्रसंग के सस्वर सुनाने लगते हैं—

"उत्संगे वा मलिन वसने सौम्य
निक्षिप्य वीणाम्................।"

कालिदास के प्रसंगों का भाव ग्रहण करके ही श्रीमती मीदिज़ अपने कवि पति से कहती है—

"नाउ मीट, जार्ज, योर इक्वल एण्ड सुपीरियर, देयर सिट्स ही, टु योर लेफ़्ट।"[26]

(अच्छा जार्ज मिलो समान प्रतिभा से, महनीय से, ये बैठे हैं तुम्हारे बाएँ बाज़ू।)

डॉ. उपाध्याय आजीवन विद्यार्थी-शोधार्थी बने रहे। प्रभाकर द्विवेदी ने डॉ. उपाध्याय को विद्वत्ता का आगार, पाण्डित्य का अगाध सागर और विश्व-इतिहास का अप्रतिम जानकार कहा है।[27]

ऋग्वेद, कालिदास साहित्य, संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी तथा विश्व की अनेक भाषाओं का साहित्य डॉ. उपाध्याय के अध्ययन का विषय बना। उनके विस्तृत अध्ययन का सबसे अच्छा प्रमाण उनकी पुस्तक 'विश्व साहित्य की रूपरेखा' है। डॉ. उपाध्याय ने अपने यात्रा-साहित्य में यत्र-तत्र अपने अध्ययन के विस्तृत फलक का दिग्दर्शन कराया है। चीनी साहित्य की परिवर्तनशील अभिव्यक्ति का अनुशीलन करते हुए डॉ. उपाध्याय लिखते हैं—

"1937 से चीनी जीवन और साहित्य में एक नया परिवर्तन आया। जापानी जंगबाजों ने चीन में शत्रु का जमकर मुकाबला किया। उसके साहित्यकार आक्रमणों

के विरुद्ध संघर्ष करने लगे। साहित्य शत्रुओं के प्रतिरोध के रूप में बढ़ा। अनेक साहित्यकारों ने कलम और बन्दूक दोनों धारण किए। इस काल में उपन्यास, नाटक, कविताएँ, लेख सभी युद्ध चेतना से लिखे गए। इस दिशा में 'चेन शाऊ चू' का उपन्यास 'वसन्त का गर्जन' विशेष उल्लेखनीय है।''[28]

एक विशेष बात यह है कि डॉ. उपाध्याय अपने अध्ययन के निर्णय प्रस्तुत करते समय प्रायः समीक्षक हो उठते हैं। सागर-यात्रा में लेखक प्रायः अध्ययनरत रहता है और पठित कृति पर टिप्पणी भी करता चलता है; यथा–पीयर लुई के उपन्यास 'अफ्रोदीती' पर टिप्पणी करते हुए वे लिखते हैं–

''अच्छा उपन्यास है। यौन शृंगारिक है, पर मिस्र में यूनानी जीवन या अच्छा भण्डाफोड़ करता है...वह यौन शृंगारिक जीवन न तो ग्राह्य हो सकता है, न स्तुत्य। एक मायूसी ज़रूर मन में पैदा करता है। अफ्रोदीती निश्चय उद्देश्यहीन कृति है।''[29]

डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में उनके अगाध अध्ययन की झलक मात्र मिलती है, क्योंकि लेखक का मुख्य उद्देश्य यात्रा-वर्णन ही रहा है।

चिन्तनशीलता

डॉ. उपाध्याय का चिन्तनशील व्यक्तित्व उनके यात्रा-साहित्य में प्रतिविम्बित हुआ है। उनके चिन्तन की सबसे बड़ी विशेषता उनकी मार्क्सवादी दृष्टि है। समाज की आर्थिक समानता, सर्वहारा के कल्याण की भावना, तार्किकता, वैज्ञानिकता एवं स्पष्टवादिता उनकी चिन्तनशीलता के ही अंग हैं। भारत की शान्ति-नीति का समर्थन उन्हें कहीं बौद्ध दर्शन तथा गांधीवाद से जोड़ता है। यह सभी चिन्तनधाराएँ डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में यत्र-तत्र विखरी पड़ी हैं।

राष्ट्रीयता से ऊपर उठकर लेखक विश्व-मानव के कल्याण की कामना से विश्व-शान्ति का पक्षधर बनकर शान्ति को अभिमत मानता है। कविवर नरेश मेहता को अपने पत्र में लेखक इसी चिन्तनधारा का पोषण करते हुए लिखता है–

''नरेश, मानवता की कराह की आवाज़ मुल्की बू बास नहीं रखती। देश-विदेश की सीमाएँ उसे नहीं रोक पातीं। जंगल, पहाड़ सात समुन्दर लाँघ हमारे दिलों को वह झकझोरती है और हमारी छाती सहवेदना से कराह उठती है। कुछ कर गुज़रने को मज़बूर कर देती है।''[30]

अनेक बार लेखक के विचार सूक्ति अथवा सुभाषित का कार्य करते हैं; यथा–

''गतिहीन सरकार भ्रष्टाचार, दीर्घसूत्रता और अतिव्ययता का केन्द्र बन जाती है। ये दुर्गुण यदि तत्काल नष्ट नहीं कर दिए जाते तो राजरोग की भाँति बढ़कर शासन को लील जाते हैं।''[31]

गो भक्ति पर विरोध अथवा व्यंग्य न करते हुए भी लेखक भारत में गौ-पालन

की दुर्दशा पर अपने स्पष्ट विचार व्यक्त करते हुए लिखता है—

"गौमाता के नाम पर शालाएँ चलाने वाले और सभाएँ करने वाले हमारे श्रद्धालु गौहत्या के नाम पर नारे तो लगाते हैं पर इसे नहीं देखते कि इनको रखने वाले कसाई के साधन उनके लिए उपस्थित कर देते हैं।"[32]

राजनैतिक विचारों एवं चिन्तनधाराओं की चर्चा हम पहले कर चुके हैं, पर उनमें जो सारभूत बातें पैदा होती हैं उन्हें यहाँ देखा जा सकता है। लेखक सूत्रशैली में ही अपने विचारों को अभिव्यक्त करता चलता है—माओ की ख्याति में लेखक को बड़ी आस्था है—"अलादीन के चिराग की क्रियाशीलता में लोगों को सन्देह हो सकता है, परन्तु माओ के कर्तृत्व में किसी मात्रा में नहीं हो सकता।"[33]

शोषण की प्रक्रिया एक ही होती है उसके रूप बदल जाते हैं। लेखक के शब्दों में—

"विजेताओं की नस्ल प्रायः एक-सी होती है पर उनके रूप हर कड़ी में बदलते जाते हैं।"[34]

इस प्रकार हम देखते हैं लेखक ने अपने चिन्तन की लहरियों को अपने यात्रा-साहित्य रूपी सरोवर में चेतना रूपी वायु की हिलकारों से प्रदर्शित किया है। डॉ. उपाध्याय की विचारशीलता और चिन्तनशीलता उनके यात्रा-साहित्य में सर्वाधिक मुखर रही है।

संवेदनशीलता

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय एक भावुक एवं संवेदनशील साहित्यकार हैं। जब वे वस्तुओं का वर्णन अपनी संवेदना से करते हैं तब उनके गद्य अथवा यात्रा-साहित्य में भी काव्यात्मकता आ जाती है। पीकिंग के शान्ति सम्मेलन की प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए डॉ. उपाध्याय अपने मित्र पंत को लिखते हैं—

"मनोभावों का वेग कितना प्रखर है, कवि, शारदा के साधनों की परिधि कितनी सीमित। व्यंजना के अव्यक्त की व्यापकता कितनी अनन्त है। न कर सकूँगा, निश्चय न कर सकूँगा उसकी अभिव्यक्ति जिसके रस से देह का कण-कण अप्लावित हो रहा था, एक-एक साँस जिससे प्राण पा रही थी।"[35]

चीन में लोगों से मिले स्नेह से लेखक कृतार्थ है। विदा के समय वहाँ के बच्चे और बूढ़े जब टूट-टूटकर रो पड़ते हैं, तब लेखक अपनी मानवीय संवदेना का परिचय देता है—अपनी अनुजा डॉ. पद्मा उपाध्याय को पत्र में उपाध्याय जी लिखते हैं—

"पद्मा, क्या कारण कि लड़कियों के दल-के-दल सहसा उन जनों के अभाव में रो पड़े, जिनको उन्होंने कभी न देखा, कभी न जाना ? और फिर इसका क्या कारण है कि आयु से प्रौढ़ और मन के पक्के मर्द सहसा टूट जायँ, उन्हें अपने

आँसू छिपाने पड़ें ? शायद इस कारण कि उनकी जाति समान है, उनके प्राण समान हैं उनके आवेग समान हैं, मानव और मानवीय।''[36]

डॉ. उपाध्याय को अपने प्रवास काल में अपने घर-परिवार, सम्बन्धी और मित्रों की याद सताती रहती है और कई बार वे उन छोटी-छोटी बातों का उल्लेख अपने यात्रा-साहित्य में करते हैं जिनसे उनकी संवदेनशीलता प्रकट होती है। बेटी चित्रा को वे पत्र में लिखते हैं–

''बेटी ! खाना कायदे से खाना। ना नू न करना, जिससे स्वस्थ रह सको।''[37]

सुमन जी और उनके परिवार की स्मृति उन्हें अपनी चीन यात्रा में कचोटती है–

''सन्नाटा छाया था।...और तब मुझे तुम्हारी याद आई। बच्चों की और तुम्हारी भली बीवी शान्ति जी की।''[38]

पत्नी श्रीमती देवकी उपाध्याय को स्मरण करते हुए वे लिखते हैं–

''तुम्हारी याद इधर खासी आई है और अपने उस नन्हें रवि की, बढ़ते बच्चे की विशेषकर... ।''[39]

अपनी अमरीका यात्रा में घर से पत्रों को पाकर लेखक कैसे भावुक हो उठता है, यहाँ द्रष्टव्य है–

''पत्रों को पढ़कर प्रसन्न हुआ। घर की याद ताज़ी हो गई फिर भी उनको बार-बार पढ़ा। ऐसा लगा यदि वे लिपिहीन सादे भी होते तो अभितृप्ति उतनी ही होती। अपने लोगों को स्पर्श करके आए थे, कितने कीमती थे भला।''[40]

इस प्रकार हम देखते हैं कि लेखक को एक संवेदनशील हृदय प्राप्त है। संवदेनशीलता के कारण उनका पूरा यात्रा-साहित्य अधिक रोचक एवं ग्राह्य बन पड़ा है। हृदय की भावनाओं और संवेदनाओं के बिना यात्रा-साहित्य भी साहित्य नहीं हो पाता, केवल वर्णन एवं सूचनाएँ तो रिपोर्ट की सर्जना कर सकती है।

प्रत्युत्पन्नमतित्व

लेखक परम मेधावी और प्रत्युत्पन्नमति है। किसी प्रश्न अथवा समस्या का तुरन्त हल निकालने की क्षमता उसे प्राप्त है। डॉ. उपाध्याय की बुद्धिमत्ता के इस गुण से परिचित होने के लिए एक-दो उदाहरण ही पर्याप्त हैं–अमरीका में भाषण के उपरान्त प्रश्नोत्तर काल में एक महिला उपाध्याय जी से पूछती है–''सुना है भारतवर्ष में लड़कियों को जन्म देते ही मार डाला जाता है ?'' इस पर तुरन्त उत्तर देते हुए डॉ. उपाध्याय कहते हैं–''हाँ मैडम, मेरी नानी ने मेरी माँ को जन्म देते ही मार डाला था।''[40]

कैसी विचित्र मेधा है, कि यदि लड़कियों को मार डालते होते तो हम भारतीय कहाँ से पैदा हो जाते। व्यंजना से लेखक यह भी कहना चाहता है कि भारत नारी

की पूजा करना जानता है।

एक बार 'वानप्रस्थ' शब्द की व्याख्या करते समय डॉ. उपाध्याय को ऐसा ही रोचक उत्तर देना पड़ा। किसी धार्मिक प्रवक्ता ने वानप्रस्थ की लम्बी-चौड़ी व्याख्या की होगी और उसका बदला लेने अथवा परीक्षा लेने के लिए डॉ. उपाध्याय से पूछा गया–

"ह्वाट इज़ दैट बिग-बिग थिंग काल्ड वानप्रस्थ ?"

लेखक ने प्रश्न की भंगिमा को समझा और तुरन्त हल्का-फुल्का सा पर समीचीन उत्तर दे डाला–

("मैडम, वह भारी-भरकम शब्द जिसे वानप्रस्थ कहते हैं, इसलिए कि जिससे पचासा लगने के बाद आप गर्भ धारण न करें।)

दूसरे दिन अमरीका के पत्रों में प्रकाशित हुआ था–

"दे बर्डेन ऑव बेयरिंग बियाण्ड फिफ्टी।"[41]

(पचासा लगने के बाद गर्भ का भार।)

जिन लोगों ने डॉ. उपाध्याय से बात की है अथवा उनके वक्तृत्व को सुना है, वे जानते हैं, कि वे अत्यन्त मेधावी और प्रत्युत्पन्नमति थे। उनके यात्रा-साहित्य में भी उनकी वह मेधा प्रकट है।

व्यक्तित्व की अन्य विशेषताएँ

अन्य विशेषताओं से हामरा तात्पर्य उन विशेषताओं से है, जो लेखक के प्रायः बाह्य व्यक्तित्व का द्योतन कराती है।

खान-पान में डॉ. उपाध्याय अत्यन्त वैष्णव थे। धार्मिक कारण से नहीं वरन् पारिवारिक संस्कारों के कारण–मांसाहार तो दूर डॉ. उपाध्याय तो लहसुन-प्याज तक नहीं खाते थे। उन्होंने स्वयं लिखा है–"...मैं मांस नहीं खाता, लहसुन प्याज तक नहीं खाता।"[42] डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल ने अपने घर पर राहुल जी आदि विद्वानों के सामने डॉ. उपाध्याय के शाकाहार पर व्यंग्य करते हुए कहा था–

"जब खुदा मियाँ ने सारे संसार को अपनी-अपनी पसन्द की चीजें लेने को कहा तब ईसाइयों और मुसलमानों ने सारी चीज़ें चुन लीं और जब हिन्दू या कम-से-कम उपाध्याय जैसे हिन्दू वहाँ पहुँचे तो धरती पर महज लहलहाती घास बच गई थी, जो उनके मत्थे पड़ी।"[43]

लेखक के वर्णनों से पता चलता है कि वह शराब आदि का भी सेवन नहीं करता था विश्वभर का भ्रमण करने वाला व्यक्ति खान-पान के बारे में इतना संयम से काम ले सके, यह आश्चर्य की बात है। डॉ. उपाध्याय की शाकाहार एवं सात्विक खान-पान की पुष्टि उनकी पत्नी श्रीमती देवकी उपाध्याय के द्वारा भी की गई।[44] अपनी चीन यात्रा में लेखक ने अपनी पत्नी देवकी उपाध्याय को लिखा था–कि

प्रतीक्षालय में शराब, वर्मूथ, कोका कोला सभी प्रकार के पेय थे और मेरा अपना सादा पेय भी था—चाय और काफी।''[45]

माओ के साथ भोज में भी उपाध्याय जी जैसे गिने-चुने भारतीय और पाकिस्तानी प्रतिनिधि ही थे, जो पीते नहीं। वहाँ भी लेखक ने उल्लेख किया है कि कैसे उन लोगों ने सन्तरे के रस के गिलास परस्पर टकराकर पी लिए।[46] अन्यत्र भी लेखक ने कहा है—''मैंने बदस्तूर जानवर को हटाकर घास पर गुजारा किया।''[47] फलों के अतिरिक्त डॉ. उपाध्याय को दही बहुत प्रिय है यह बात उनके पद्मा उपाध्याय को लिखे पत्र से स्पष्ट हो जाती है।[48]

डॉ. उपाध्याय का एक और महत्त्वपूर्ण स्वभाव उनके यात्रा-साहित्य में स्पष्ट हुआ है कि वे अनिद्रा रोग से भी पीड़ित थे। स्वयं उन्होंने लिखा है—''मेरे लिए चार घण्टों की नींद बड़ी न्यामत है; मुँहमाँगा वरदान।''[49]

डॉ. भगवतशरण को एकाकीपन अत्यन्त प्रिय है। जहाज में समुद्री यात्रा करते समय एकान्त पाकर वे कहते हैं—''यह मुझे अच्छा लगा कि मैं अकेला ही हूँ और शायद रहूँगा भी।''[50] अमरीका की भारी भीड़ में वहाँ का हंगामा भरा नया वर्ष मनाया जाता है, लोग अमरीकी भीड़ को सभी पाश्चात्य हरकतें करते पाए जाते हैं लेखक उस भीड़ में नहीं जाना चाहता, यह भी उसके एकान्त प्रिय स्वभाव की ही परिचायक घटना है।[51]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि डॉ. उपाध्याय का व्यक्तित्व प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उनके यात्रा-साहित्य में प्रतिफलित हुआ है। यात्रा-साहित्य के अध्ययन मात्र से उनके समूचे व्यक्तित्व का व्याख्या-विश्लेषण तो नहीं किया जा सकता, क्योंकि यात्रा-साहित्य रचना की अपनी सीमाएँ हैं। वह आत्मकथा के स्तर पर व्यक्तित्व का आकलन करने का अवसर नहीं देता। किन्तु यह ध्यातव्य है कि डॉ. उपाध्याय का चिन्तन, स्वभाव, संवेदना सभी कुछ उनके यात्रा-साहित्य में मुखरित होता रहा है। इस अध्ययन से कई विचित्र तथ्य भी उद्घाटित हुए हैं। उदाहरण के लिए नास्तिक होते हुए भी मार्क्सवादी चिन्तन से प्रभावित होते भी डॉ. उपाध्याय वैष्णवी भोजन ही पसन्द करते थे और सात्विक ब्राह्मणों की भाँति मदिरा आदि को भी त्याज्य मानते थे। वस्तुतः उनका यात्रा-साहित्य उनके व्यक्तित्व की छाया पाकर अधिक ग्राह्य, रोचक और भावपूर्ण बन गया है।

सन्दर्भ

1. कालिदास; भगवतशरण उपाध्याय; पृ. 19
2. सागर की लहरों पर; पृ. 13
3. घूमने का राज; पृ. 243
4. वही; पृ. 137

5. सागर की लहरों पर; पृ. 27
6. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 145
7. घूमने का राज; पृ. 174
8. लाल चीन; पृ. 16
9. घूमने का राज; पृ. 129-30
10. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 54
11. वही; पृ. 148
12. सवेरा, संघर्ष और गर्जन; भूमिका।
13. सागर की लहरों पर; डॉ. भगवतशरण उपाध्याय; पृ. 240-41
14. घूमने का राज; पृ. 188
15. तदेव; पृ. 189-90
16. धर्मयुग; 26 सितम्बर, 1982
17. घूमने का राज; पृ. 191
18. वही; पृ. 194-95
19. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 10
20. कालिदास; पृ. 252
21. श्रीमती देवकी उपाध्याय से लेखक का साक्षात्कार; दि. 19-7-86
22. सागर की लहरों पर; पृ. 42
23. वही; पृ. 29
24. धर्मयुग; 26 सितम्बर, 1982
25. घूमने का राज; पृ. 286
26. वही; पृ. 287
27. प्रभाकर द्विवेदी का लेख—डॉ. भगवतप्रसाद उपाध्याय : कुछ यादें; नवभारत टाइम्स, 15 अगस्त, 1982
28. लाल चीन; पृ. 129
29. सागर की लहरों पर; पृ. 19-20
30. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 137
31. वही; पृ. 5
32. सागर की लहरों पर; पृ. 225
33. लाल चीन; पृ. 16
34. वही; पृ. 3
35. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 123
36. वही; पृ. 46
37. वही; पृ. 87
38. वही; पृ. 40
39. वही; पृ. 173
40. नवभारत टाइम्स, 15 अगस्त, 1982 में प्रकाशित प्रभाकर द्विवेदी के लेख—डॉ. भगवतशरण उपाध्याय : कुछ यादें—से उद्धृत।
41. घूमने का राज; पृ. 297-98

42. वही; पृ. 198
43. वही; पृ. 199
44. श्रीमती देवकी उपाध्याय से साक्षात्कार, दि. 19-6-86
45. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 10
46. वही; पृ. 99
47. वही; पृ. 92
48. वही; पृ. 49
49. वही; पृ. 40
50. सागर की लहरों पर; पृ. 23
51. शेड्स एण्ड शेडोज़; डॉ. वी. एस. उपाध्याय; पृ. 14

6

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के यात्रा-साहित्य का शिल्पगत अध्ययन

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में उनका शिल्पगत कौशल अप्रतिम है। डॉ. सुरेन्द्र माथुर के अनुसार साहित्यिकता, कलात्मकता, भाषा सौष्ठव, भावात्मकता एवं विवरणों की प्रधानता की दृष्टि से डॉ. उपाध्याय श्रेष्ठ यात्रा-साहित्यकार हैं।[1] प्रभाकर द्विवेदी लिखते हैं कि राहुल जी की तुलना में उपाध्याय जी शैली पर बहुत ध्यान देते थे। कहना चाहिए कि वे मूल रूप से शैलीकार थे, उनके लेखन में काव्य बोलता है।[2] प्रो. उमेश शास्त्री डॉ. भगवतशरण उपाध्याय की गणना उन यात्रा-साहित्यकारों में करते हैं, जो प्रकृति-चित्रण, समाज-जीवन तथा शैली-शिल्प की दृष्टि से समर्थ लेखक हैं।[3]

भाषा

भाषा विचारों की संवाहिका होती है। यात्रा-साहित्य में भाषा का महत्त्व अथवा उसका उत्तरदायित्व इसलिए अधिक हो जाता है, क्योंकि उसमें जीवन के स्पन्दन, अनुभूतियाँ, वस्तुओं का यथातथ्य किन्तु रोचक चित्रण प्रस्तुत करना पड़ता है। यात्रा-साहित्य में अत्यन्त संवेदनगर्भी, चित्रात्मक, सही एवं विश्वसनीय भाषा की आवश्यकता होती है। यही नहीं यात्रा-साहित्य में कभी रचनाकार किसी कहानी लेखक की भाँति किसी चरित्र का अंकन करता है, कभी वातावरण को मुखर करता है, कभी किसी चित्रकार की भाँति प्रकृति के नाना रूपों का सजीव चित्रांकन करता है और कभी गम्भीर विचारों में डूबा हुआ किसी दार्शनिक की मुद्रा में गुत्थियाँ सुलझाता है। उसकी भाषा में वे सभी गुण होने आवश्यक होते हैं, जो लेखक के विभिन्न रूपों का निर्वाह करने में सक्षम हों। डॉ. तारिणीचरणदास 'चिदानन्द' ने यात्रा-साहित्य की बहुमुखी रचनाशीलता पर विचार प्रकट करते हुए उचित ही लिखा है—''यात्रा-साहित्य कहानी नहीं है, भ्रमण-कहानी है। यह उपन्यास भी नहीं है, परन्तु प्रसिद्ध भ्रमण-वृतान्त राष्ट्रीय उपन्यास-सा अपने में एक समूचे देश और

संस्कृति को समेट सकता है। यह कविता नहीं परन्तु रोचक-वर्णनों से काव्यात्मक आनन्द प्रदान कर सकता है। यह समीक्षा नहीं, परन्तु देश और काल की कड़ी समीक्षा अपनी दृष्टि से कर सकता है।''[4] इन सभी विधाओं की विविधता की शैल्पिक बनावट को मौलिक आकार भाषा ही देती है, इसलिए यात्रा-साहित्य की भाषा में उष्णता, प्रसरणशीलता, चित्रात्मकता, आलंकारिकता तथा वर्णनात्मकता के गुण होने आवश्यक हैं।

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार भारतीय तथा पाश्चात्य भाषाशास्त्र में सामान्यतः भाषा के तीन तत्त्व माने गए हैं—वर्ण, पद और वाक्य। इसके अतिरिक्त एक और भी तत्त्व है—प्रबन्ध, जिसे भारतीय साहित्य में महावाक्य और पाश्चात्य साहित्य में 'डिस्कोर्स' कहा जाता है।[5] वर्ण भाषा की इकाई है। आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा के अनुसार—''उच्चारण की दृष्टि से भाषा की इकाई ध्वनि है और सार्थकता की दृष्टि से शब्द।''[6] भाषा के प्रयोग की उपादेयता उसकी अर्थ शक्ति में ही है, इसलिए हम डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के यात्रा-साहित्य की भाषा का अध्ययन उनकी शब्द-संरचना से ही करते हैं।

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय ने तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग अपने यात्रा-साहित्य में किया है, लेकिन उनके शब्द-चयन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे शब्द का सार्थक प्रयोग और चयन करते हैं। शब्द प्रयोग के विषय में डॉ. नगेन्द्र का कथन बहुत समीचीन है कि उचित शब्द का चयन आवश्यक है किन्तु पर्याप्त नहीं है। सुन्दरतम शब्दों का क्रम बन्धन सुन्दरतम ही होना चाहिए तभी कला का रूप पूर्ण होता है।[7] इस दृष्टि से डॉ. उपाध्याय का शब्द-विन्यास प्रशंसनीय है। जब कहीं वे भावात्मक चित्र प्रस्तुत करते हैं अथवा सौन्दर्य तरंगों को रूपायित करने का प्रयास करते हैं, तब अनायास ही उनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ हो उठती है—कविवर सुमित्रानन्दन पंत के नाम लिखे पत्र में डॉ. उपाध्याय की भाषा इस दृष्टि से यहाँ उल्लेखनीय है—

''उचित तो यह था कि कुछ नरम-तरल लिखता, कुछ मर्म की बात, जिससे आपके स्निग्ध-आर्द्र मन को ठेस न लगे; पर वह काम मेरा नहीं, आपका है, कल्पनाओं की दोला जिसका आधार है, मलय का स्पर्श जिसकी रज्जु है, मकरन्द की सुरभि जिसकी हिलोर है।...''[8]

डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में भाषा उनके विचारों का अनुगमन करती है। वे भाषा की 'फार्म' पर नहीं जाते वरन् उनकी भाषा उनके विचारों अथवा वर्ण्य-वस्तु के अनुरूप आकार बदलती चलती है। कालिदास के विशिष्ट अध्येता तथा संस्कृत भाषा के पण्डित होने पर भी तत्सम शब्दों के प्रति मोह लेखक को नहीं है और वह हिन्दी भाषा के वृहत्तर सम्भावित रूप की कल्पना लेकर ही चलना चाहता है, जिसमें अरबी-फारसी के शब्दों से परहेज़ का अवसर नहीं है। उर्दू-हिन्दी

के वृहत्तर रूप की परिकलपना करते हुए वे लिखते हैं–"दोनों ही भाषाएँ या वस्तुतः शैलियाँ एक भाषा बनाती हैं, जिसे हम सुविधा के लिए हिन्दी कह सकते हैं और इसलिए भी हिन्दी की अवधारणा एक वृहत्तर सम्भावना तथा क्षेत्र का संकेत देती है, जो भव्य तथा महाकाव्यीन स्तर पर विकसित होने में सक्षम है।"[9] भाषा को डॉ. उपाध्याय कलम का बीज मानते हैं और बताते हैं कि शब्द देश-विदेश की यात्राएँ करते हैं तथा जीवित रहते हैं। उदाहरणस्वरूप वे ग्रीक शब्द 'दुखम' की चर्चा करते हैं जो भारत में द्रख्म से द्रम्म और फिर दाम होकर पैसे का पर्याय बनकर चलता है।[10]

तद्भव शब्दों का प्रयोग डॉ. उपाध्याय अपनी भाषा में जान-बूझकर करते हैं और कई बार लगता है शब्द को तराशकर वे उसमें निखार पैदा कर देते हैं; यथा–"अट्टालिकाएँ अपने शिखर दीपों से आकाशगंगा में अनन्त नीहारिकाएँ सिरज रही थीं।"[11] यहाँ शब्द–'सिरजना' एक प्रकार से काव्यात्मकता एवं चित्रोपमता पैदा करने में अधिक सक्षम है। यदि यहाँ 'सर्जन कर रही थीं' या निर्माण 'कर रही थीं' ऐसा कुछ प्रयुक्त होता तो भाषा की शक्ति में ह्रास होता। इसी उद्देश्य से लेखक ने समुद्र के स्थान पर 'समुन्दर' तथा 'अंगुष्ठ' के स्थान पर 'अँगूठा' शब्द का प्रयोग किया है।[12] वस्तुतः डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य की भाषा में तद्भव शब्दों का खूब प्रयोग हुआ है।

अरबी, फारसी और अंग्रेजी शब्दों को बेधड़क प्रयोग करके डॉ. उपाध्याय ने अपने यात्रा-साहित्य में सहजता ला दी है; यथा–

1. "घूमने का राज फल रहा था–कुली को टैक्सीवाले ने दिया, टैक्सीवाले को देल्फ़ी होटल के मैनेजर ने...तीसरे दिन प्रेस कान्फ्रेन्स जो हुई...।"[13] (अंग्रेजी शब्द)

2. "मेरे पास न राज थे, न घोड़े-हाथी थे, न मेहरबान, न सुलतान अमीर थे, पर हाँ, कलम का राज ज़रूर था, जिसका मैंने भरपूर उपयोग किया।"[14] (अरबी-फारसी शब्द)

डॉ. उपाध्याय के वाक्यों का विन्यास भावानुकूल होता है। भावानुरूप ही वे छोटे अथवा बड़े वाक्यों का निर्माण करते चलते हैं। जहाँ केवल घटनाओं की सूचना होती है, वहाँ वाक्य प्रायः छोटे बनते हैं; उदाहरण के लिए–

"आज नवम्बर की छठी तारीख है। जहाज़ का हिलना-डुलना रात से ही कम हो गया है। जिससे लगता है, समुद्र शान्त है।"

विचारों के गुम्फन अथवा भावों के आलोड़न में लेखक ने स्वाभाविक रूप से लम्बे-लम्बे वाक्यों की रचना की है। विचारात्मकता एवं भावात्मकता की अधिकता के कारण डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में लम्बे वाक्य ही अधिक पाए गए हैं;–विचार गुम्फन में बने एक लम्बे वाक्य का उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है–

"और कहकहे लग चले, जब मैंने कहा कि पिताओं, कारणों की परम्परा कहीं नहीं टूटती, सबका कारण है और कारण अपने ही कार्य का निकटतम पूर्व, और चूँकि यह कार्य-कारण की शृंखला, जो स्वतः पूरित है नहीं टूटती, हम किसी मंजिल पर नहीं पहुँच सकते—जहाँ कारण उपस्थित न हों यानी जहाँ कारणों की गति रुक जाने से इस संसार से परे की किसी शक्ति की कल्पना करनी पड़े, यानी इस चराचर जगत् का अनादित्व नित्य सत्य है।"[16]

पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग लेखक करता है। इसी कारण अंग्रेजी के लम्बे-लम्बे वाक्य भी लेखक ज्यों-के-त्यों प्रयुक्त कर देता है और कोष्ठक में उस वाक्य का अर्थ भी स्पष्ट करता चलता है। अनेक बार तो लेखक दो-चार वाक्यों की लम्बी बातचीत ही अंग्रेजी में प्रस्तुत करता है। सम्भवतः परिवेश तथा पात्र के वास्तविक स्वरूप को उभारने के लिए ही लेखक ऐसा करने के लिए बाध्य है। उदाहरणस्वरूप यहाँ दो ऐसे वाक्य प्रस्तुत हैं, जिनके माध्यम से लेखक के भाषण के बाद एक महिला श्रोता से उसका प्रश्नोत्तर चलता है। महिला पूछती है—

"डू इण्डियन हस्वेण्ड्स नाट एप्रिशिएट रेड लिप्स ?"[17]

(क्या भारतीय शोहर लाल रचे होंठ पसन्द नहीं करते ?)

डॉ. उपाध्याय की भाषा का सबसे बड़ा गुण है—चित्रोपमता। शब्द-चित्रों के माध्यम से वे किसी भी वस्तु या चरित्र को सजीव कर देने की क्षमता रखते हैं। ऐसे स्थलों पर एक-एक शब्द चित्र उभारता चलता है—उदाहरणार्थ—

"समुद्र शान्त है, प्रशान्त गाँव के गड़े की तरह। इसमें ज़रा भी लहर, स्पन्दन मात्र तक नहीं। आदृष्टि फैले हुए जल की चादर है। धूप उस पर तेज चमक रही है। और एक ऐसा कुहासा-सा पड़ा हुआ है कि पता ही नहीं चलता कि हम आसमान देख रहे हैं या समुन्दर।"[18]

स्पेनिश भाषा के मधुर कवि सलामिया का चित्र लेखक के ही शब्दों में यहाँ दर्शनीय है, जिसमें शब्दों की व्यंजकता स्वयं लक्ष्य की जा सकती है—

"मंझोले से कुछ ऊँचा गढ़ा शरीर, घुँघराले बाल, सुबह की दूज की चाँदनी-सा लाल-पीला रंग जैसे पीला कमल कुम्हला गया हो। शान्ति-सम्मेलन का एक सुन्दरतम नर, मेरा प्रिय सहचर...।"[19]

अलंकृत भाषा का प्रयोग लेखक की काव्यात्मक अभिव्यक्ति का परिचय देता है। कालिदास की परम्परा में प्रस्तुत उपमाएँ तथा अन्य प्रचलित अलंकारों का प्रयोग लेखक के यात्रा-साहित्य को अधिक रोचक एवं काव्यात्मक बना देते हैं; उदाहरणार्थ—

1. "सफेद हरे, काले, बादल; साफ-गंदले बादल; बालू के टीलों-से, उठते-गिरते रुई के अम्बारों-से बादल।"[20] (उपमा)
2. "उनका स्वास्थ्य टटकेफूल-सा खिला हुआ।"[21] (उपमा)

3. "चेहरे वास्तव में इतना साफ कि लगता था—एकाध परत त्वचा की हटा ली गई हो।"[22] (रूपकातिशयोक्ति)
4. "पानी की सतह पर हिलती हुई नावों पर हम जा बैठे, जिनके स्पर्श से झील काँप रही थी।"[23] (मानवीकरण)
5. शुभ कामनाएँ जो पहाड़ों से कहीं ऊँची थीं, आकाश से कहीं व्यापक...।"[24] (व्यतिरेक)

आलंकारिकता के अतिरिक्त डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में वाक्य-संरचना की एक बड़ी विशेषता यह है उसमें अनेकशः लेखक कर्ता अथवा अन्य शब्द-रूपों की आवश्यकता नहीं समझता, वस्तुतः उन उपादानों के प्रयोग के बिना भी अर्थ में कोई अन्तर नहीं पड़ता और लेखक की भाषा की समासिकता भी बनी रहती है—कर्ताहीन सार्थक वाक्य का प्रयोग यहाँ द्रष्टव्य है—

"ऊपर से डेक पर पहुँचा, घड़ी मिलाई और नीचे उतर पड़ा।"[25]

'प्रबन्ध' तत्त्व भाषा की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। डॉ. नगेन्द्र प्रबन्ध तत्त्व की व्याख्या करते हुए लिखते हैं—"इसकी रचना परस्पर सम्बद्ध अनेक वाक्यों के समुदाय से होती है। प्रबन्ध का लघुतम रूप है प्रकरण और वृहत्तम रूप है—महाकाव्य...।"[26]

यात्रा-साहित्य में प्रबन्ध के दोनों महत्त्वपूर्ण रूप (प्रकरण और महाकाव्य) प्रयुक्त होते हैं। विस्तृत दृष्टिकोण से देखें तो लगेगा कि किसी भी यात्रा-साहित्य में देश, राष्ट्र, जाति, प्रकृति, परिवेश को मिलाकर एक महाकाव्य की सम्भावना की जा सकती है और उस महाकाव्य के घटक होते हैं—छोटे-छोटे प्रकरण जिनमें कहीं प्रकृति प्रमुख होती है, कहीं नगर गाँव और कहीं चरित्र अपने आप झाँकने अथवा उझकने लगते हैं।

डॉ. उपाध्याय ने अपने यात्रा-साहित्य में छोटे-छोटे प्रकरण परस्पर जोड़े हैं, क्योंकि निरन्तर गतिशीलता के कारण यात्रा-साहित्य में एक ही प्रकरण को कहानी की भाँति बुना नहीं जा सकता, फिर भी लेखक के छोटे-छोटे प्रकरण कभी कहानी और कभी कविता जैसा आनन्द प्रदान करते हैं। उदहारणार्थ—नाज़िम हिकमत से लेखक की भेंट संक्षिप्त किन्तु रोचक बन पड़ी है—

"जलामिया ने मेरा परिचय उन्हें दिया और उन्होंने अपनी लम्बी बातों में मुझे समेट लिया। खुशनुमा चहेरा, पूरे चाँद की चाँदनी जैसी मुस्कराहट, घुँघराले उलझे सुनहरे बाल, सुनहरी ऊपर को कुछ उठी उलझी मूँछें, सुनहरी बाँकी भौंहें।"[27]

इस भेंट की शेष कथा और भी रोचक है। नाज़िम हिकमत डॉ. उपाध्याय को कुछ समझाते हुए धाराप्रवाह बोलते जाते हैं बीच-बीच में लेखक उन्हें रोककर अपनी बात कहना चाहता है लेकिन नाज़िम का दुर्दम वाक्यप्रवाह नहीं रुकता और वे डॉ. उपाध्याय से बार-बार कहते हैं—"ठहरो भई—! पहले मुझे पूरा कह लेने दो,

तब तुम कहना।''[28]

पैंतालीस मिनट लगातार बोलने के बाद नाज़िम हिकमत डॉ. उपाध्याय से बोले—''मैंने अपनी बात कह ली। बोलिए आपको इस निस्बत क्या कहना है ?''

लेखक ने उत्तर दिया—''अब क्या खाक कहूँ, कहना तो बस इतना ही था कि मैं फ्रेंच नहीं जानता, जिसमें आप धाराप्रवाह बोले जा रहे हैं।''[29]

फिर ठहाकों के शोर में यह भेंट-कथा समाप्त हो गई।

लेखक ने अपने आलोचना, इतिहास एवं पुरातत्त्व-सम्बन्धी साहित्य की अपेक्षा यात्रा-साहित्य में कठिन भाषा का प्रयोग कम किया है, अपितु उसमें प्रवाह सर्वत्र बना रहा है। यत्र-तत्र मुहावरों के प्रयोग से भाषा में सहज गत्यात्मकता का समावेश हुआ है; यथा—

1. ''इस पर बहुत दंगल मचा।''[30]
2. ''प्रेम की बेलें अपनी छाती के दूध से सींच चली थीं।''[31]

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने जैसी भाषा के प्रयोग का निदेश डॉ. उपाध्याय को अपने पत्र में दिया था, वैसी ही सरल, अच्छी किन्तु साहित्यिक हिन्दी का प्रयोग उनके यात्रा-साहित्य में हुआ है।[32] शताधिक महत्त्वपूर्ण पुस्तकों के लेखक एवं विश्व के कोने-कोने में संस्कृति, सभ्यता, पुरातत्त्व एवं इतिहास-सम्बन्धी अलख जगाने वाले डॉ. उपाध्याय की भाषा में स्वाभाविक प्रवाह, गति, गरिमा एवं यत्र-तत्र पाण्डित्य की झलक भी मिलती है। यात्रा-साहित्य में प्रयुक्त उनकी भाषा को सरल भाषा ही कहा जाना चाहिए, जो विचारों का, भावों का एवं चित्रों और चरित्रों का सहज निरूपण करने में समर्थ रही है।

शैली

किसी भी लेखक की शैली में वस्तुतः उसके व्यक्तित्व की छाप दिखाई देती है। 'शैली' शब्द संस्कृत शील शब्द से व्युत्पन्न माना जाता है। शील का प्रयोग व्यक्ति की वैयक्तिक विशेषता के लिए होता है।[33] व्यक्तित्व का प्रतिपादन करने के कारण हरेक लेखक की शैली अन्य लेखकों से पृथक् और विशिष्ट होनी चाहिए, होती भी है। प्रख्यात समीक्षक हडसन ने उचित ही लिखा है कि जिस व्यक्ति के पास कहने के लिए कुछ अपना है, वह उसे व्यक्त करने के लिए वास्तविक निजी पद्धति की खोज में कदाचित् ही असफल होता है। उसका अपना चिन्तन दूसरे की शैली में व्यक्त नहीं हो सकता।[34]

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय की लेखन-शैली किसी का अनुकरण नहीं है, क्योंकि उनका व्यक्तित्व अपने समकालीन विद्वानों-लेखकों के समकक्ष अथवा उनसे श्रेष्ठ होते हुए भी उनसे भिन्न था। उनकी शैली की विशिष्टता ही उन्हें महापण्डित राहुल सांकृत्यायन से अलग और अपेक्षया अधिक कलात्मक लेखक के रूप में

प्रतिष्ठित करती है।

डॉ. उपाध्याय का यात्रा-साहित्य शैली की दृष्टि से और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है उन्होंने अपने पूर्ववर्ती यात्रा-लेखकों से अधिक साहित्यिक यात्रा-वर्णन लिखने की परम्परा का सूत्रपात किया, यदि यह कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। डॉ. रघुवंश भी डॉ. उपाध्याय तो अपने पूर्ववर्ती यात्रा लेखकों की अपेक्षा अधिक साहित्यिक बताते हैं।[35] डॉ. उपाध्याय ने अपने यात्रा-साहित्य में प्रमुखतः निम्नलिखित शैलियों का प्रयोग किया है–

1. विचारात्मक शैली

डॉ. उपाध्याय एक चिन्तनशील व्यक्तित्व के स्वामी थे। अपने भ्रमण-काल में चिन्तन-सूत्रों को निरन्तर जोड़ते रहना उनके व्यक्तित्व की विशेषता है। उनकी क्रान्ति दृष्टि, शान्ति प्रेम, साम्यवादी दृष्टिकोण, वस्तुओं के प्रति साहित्यिक प्रतिक्रियाएँ सर्वत्र देखी जा सकती हैं। विचारों की सरणी लेखक को निरन्तर अपने व्यक्तित्व एवं यात्रा में दिखने वाली वस्तुओं से जोड़े रहती हैं जिससे कि पाठक को उनके यात्रा-साहित्य में नैरन्तर्य का अनुभव होता रहता है। यद्यपि यात्रा-साहित्य में वैचारिकता थोपी नहीं जा सकती लेकिन डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में वैचारिकता का अधिक पुट है। वे अपने विचार मंथन के बाद अनेकशः निष्कर्ष भी देते चलते हैं। इण्डोनेशिया की मिश्रित जातियों से मिलकर वर्ण-संकरता अथवा मिश्रित जाति के लोगों के प्रति प्रशंसा के विचार डॉ. उपाध्याय ने इस प्रकार व्यक्त किए हैं–

"मैं उनमें से हूँ, जो इस प्रकार की उपज को सहारा नहीं देते उसको साधुवाद करते हैं। मनुष्य की सुन्दरता उसके प्रेम, निष्कलुष सर्जन का इससे अधिक सुन्दर प्रमाण नहीं; परन्तु उसकी केन्द्रित घृणा उसे क्षुद्र बना देती है। मेरा दावा है–मनुष्य के कल्याण का एक मार्ग मिश्रित सर्जन है, जो मनुष्य को उसके घृणित गोरे-काले के अन्तर से ऊपर उठाएगा। काश कि ऐसे प्रजनित नर-नारी अपनी इस सुघड़ शक्ति को पहचान पाते। संकरता जन्म की बुरी नहीं विचारों की बुरी होती है।"[36]

लेखक के विचार एकदम अपने होते हैं, जो किसी की निन्दास्तुति की परवाह किए बिना व्यक्त होते हैं। लेखक के विचार जब तर्क की प्रौढ़ता पा जाते हैं, तब सिद्धान्त गढ़ने की स्थिति में होते हैं, भले वे सर्वजन ग्राह्य न हो। परमात्मा के अस्तित्व को नकारते हुए लेखक तर्क देकर अपने विचार इस प्रकार व्यक्त कर देता है–

"आखिर उसकी (खुदा की) रहमत कहाँ बरसती है ? श्रीमानों पर अत्याचारियों पर और अन्यायियों पर क्यों ? ईमानदारों, ग़रीबों, सर्वहाराओं पर भला क्यों नहीं ! यदि तर्क की युक्तियों को अलग रख भी दें, इन बातों से भगवान्

की असिद्धि हो जाती है।"[37]

शान्ति के महत्त्व की चर्चा करते हुए लेखक अपने विचार इस प्रकार व्यक्त करता है–

"शान्ति क्या पाप है ? दण्डनीय अपराध है ? इससे डर क्यों ? क्या यह इन्सानियत का मूलभूत प्राथमिक तत्त्व नहीं ?...क्या शान्ति वह बुनियादी आवश्यकता नहीं, जो इन्सान की महान् विरासत की रक्षा और प्रगति के लिए अनिवार्य है।"[38]

इस प्रकार डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में विचारात्मक शैली का प्रयोग अपेक्षया अधिक हुआ है, लेकिन कहीं भी उनके वर्णन विचारों के कारण बोझिल नहीं होने पाए हैं।

2. भावात्मक शैली

डॉ. उपाध्याय एक अत्यन्त संवेदनशील साहित्यकार हैं। घर से अलग रहने के कारण उन्हें घर की याद सताती है। विश्व मानवता के सामने युद्धों की विभीषिकाएँ हहरा रही हैं, यह देखकर उनकी करुणा भावना स्रोतस्विनी-सी वह चलती है। प्रकृति एवं मानव-सौन्दर्य को देखकर वे सहज कवि हो उठते हैं और उनकी काव्यात्मक संवेदना में सहायक होती है–उनकी भाषा।

राहुल सांकृत्यायन भारत में अस्वस्थ थे। उनकी पत्नी लोला और बेटा इगोर रूस में उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। डॉ. उपाध्याय ने विरहिणी लोला का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है–

"...लोला का वहाँ अपने राहुल का सालों से इन्तज़ार कुछ वैसा ही लगा जैसे विरहिणी का अलका में विरही यक्ष के लिए इन्तज़ार। वह किसका शेर है, शायद मुल्ला का–

आए हो, अरे आवाज़ तो दो,
आँखों का नूर छीन लिया इंतज़ार ने।"[39]

ईगोर से जब डॉ. उपाध्याय ने पूछा कि भारत से उसके लिए क्या भेजे ? तब उसने कहा कि मेरा पिता जो फिर कभी मुझसे अलग न हो, तब लेखक की आँखें सहसा गीली हो आईं।[40]

चीन के खण्डहरों में लेखक को भारतीय परिवेश की याद ताजी हो जाती है और वह इतिहास-निर्माताओं का भावात्मक स्मरण करता है–

"महान् थे वे...जिन्होंने ताज खड़ा किया। अजन्ता और एलोरा की गुफाएँ काटीं और उनकी सूखी दीवारों को दर्पणवत चिकनाकर उन पर अभिराम चित्र लिखे। फिर वे जिन्होंने पिरामिड बनाए, सिकन्दरिया का आलोक स्तम्भ बनाया, रोड्स का कोलोसस।"[41]

भावात्मकता के कारण तथ्यात्मक विवरण भी ऐसे लगते हैं, मानो लेखक काव्य-रचना कर रहा है। सूचनाओं और तथ्यांकन में भावुकता के कारण सर्वत्र एक आत्मीयता एक तरलता एवं एक प्रवहनशीलता के दर्शन होते हैं। विकासशील चीन का ब्यौरा देते हुए डॉ. उपाध्याय लिखते हैं–

"चीन ने तूफान झेले हैं, अकाल और भूख की कचोट जानी है, शीत और गर्मी का पाला और जलन सही है, अपमान और लांछना बर्दाश्त की है, पर वह आज़ाद है, अपनी फौलदी जंज़ीरों को तोड़ चुका है। अभी हाल तक उसके विदेशी शत्रु उसे चूसते-सोखते रहे हैं, शत्रु जिन्होंने दुनिया को सभ्य बनाने का बीड़ा उठाया पर उसे अपने जीवन का साधन बनाया। चीन आज उन्हें अपनी ज़मीन से बाहर कर उसके जर्रे-जर्रे में जीवित हो चला है। उसके एक-एक कंकड़ में आज पर्वत की ऊँचाई है, उसके जल के एक-एक कतरे में समुन्दर की गहराई है। चीन आज जाग्रत है।"[42]

3. विश्लेषणात्मक शैली

डॉ. उपाध्याय ने अपने यात्रा-साहित्य में इस शैली का प्रयोग बहुत कम किया है। विचारात्मकता के साथ-साथ ही यह शैली प्रयुक्त हुई है। यदि हर विचार तन्तु को विश्लेपित किया जाय तो यात्रा-साहित्य बोझिल हो जाएगा और वह विश्लेषणात्मक निबन्ध बन जाएगा। किसी कथन के बाद उसका व्यास विश्लेपण कभी-कभी लेखक करता है, किन्तु उस विश्लेषण में भी रोचकता समाप्त नहीं होती। उदाहरणार्थ लेखक का भोजन सम्बन्धी कथन यहाँ उल्लेखनीय है और फिर उसका विश्लेषण भी–

"खाने की विधि जीवन में बहुत अर्थ रखती है। उसके विकास के सिलसिले पर आदमी का समूचा इतिहास लिखा है–बगैर राँधे कच्चे मांस के आग और नमक के संपर्क से उठकर गरम मसालों के इस्तेमाल के जमाने से लेकर आज उबाले हुए मांस के अनभ्यस्त मांस के लिए असह्य भाप निकलने वाले मांस से भरी मेज तक।"[43]

4. आत्मपरक शैली

यात्रा-साहित्य विधा की रचना-प्रक्रिया ही आत्मपरक है। इसलिए उसमें लेखक का 'स्व' सर्वत्र अभिव्यक्त होता है। समस्त वर्णनों, चित्रों एवं चरित्रों के बीच में लेखक का अपना व्यक्तित्व अभिव्यक्त होता रहता है। यद्यपि यात्रा-साहित्य में आत्मपरकता की एक सीमा है, लेकिन उसके व्यक्तिगत संवेदन, स्फुरण एवं भावाभिव्यक्ति के बिना भी यात्रा-साहित्य प्राणहीन हो जाएगा। डॉ. उपाध्याय ने अपने 'स्व' की अभिव्यक्ति खूब की है, जिसके परिणामस्वरूप उनका यात्रा-वर्णन

अधिक रोचक बन पड़ा है। उनके व्यक्तिगत विचार, भावनाएँ और व्यक्तित्व की विशेषताएँ आत्मपरक शैली के माध्यम से ही अभिव्यक्त हुई है। पिछले अध्याय में लेखक की आत्मपरकता की चर्चा विस्तार से की जा चुकी है।

लेखक शाकाहारी है। विदेशों में प्रायः शाकाहार की व्यवस्था होते हुए भी मांसाहार की सजावट, प्रदर्शन एवं विविध प्रकार अधिक आकर्षक होते हैं, ऐसी स्थिति में लेखक के वैष्णवी संस्कार बड़ी रोचकता के साथ आत्म-कथन का लक्ष्य बनते हैं—डॉ. उपाध्याय लिखते हैं—

"खाने की यहां हजार न्यामते हैं, पर वे मेरे लिए नहीं हैं क्योंकि मैं गोश्त नहीं खाता।...मैं उन्हीं अभागों में से हूँ, जो खुदा मियाँ के दरबार में सबसे पीछे पहुँचे थे। धर्म का संकट न होने पर भी मैं मांस आदि नहीं खा पाया, नहीं खा पाता।"[44]

एक स्थान पर तो यात्रा के दौरान लेखक ने लगभग दो पृष्ठों में भावात्मक आत्म-कथा ही लिखी है—अपने बीते जीवन पर दृष्टिपात करते हुए लेखक अपने बचपन का विवरण देता है—

"मेरा सारा पिछला जीवन साकार जैसे सजीव हो, लौट पड़ा। बचपन, गाँव का जीवन—ज़िला बलिया के उजियार का, अनेक बार आँखों के सामने उठ आया। भरापूरा परिवार पण्डित कुटुम्ब, सुन्दर और वृद्धा चचेरी तीरनज़र दादी की सख्ती के बीच माँ का शान्त धीर जीवन और उसकी छाया में बीता मेरा बचपन कल का बीता-सा सहसा झलक आया।"[45]

लेखक का विनोदी स्वभाव भी यत्र-तत्र आत्मपरक शैली में ही अभिव्यक्त हुआ है—अमरीका में जब एक महिला लेखक से पूछती है—कि वह भारी-भरकम-सा शब्द 'वानप्रस्थ' क्या है, तो लेखक का विनोदपूर्ण उत्तर हास्य-विनोद की एक लहर छोड़ जाता है—

"फिर जाने मैडम, कि वह भारी-भरकम शब्द जिसे 'वानप्रस्थ' कहते हैं, इसलिए कि जिससे पचासा लगने के बाद आप गर्भ धारण न करें।"[46]

5. वर्णनात्मक शैली

यात्रा-साहित्य में वर्णन ही प्रधान होते हैं। डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में बहुविध वर्णन मिलता है, प्रकृति-चित्रण, चरित्रांकन, नगर एवं ग्राम-वर्णन उनमें से प्रमुख है और इन वर्णनों में पुरातात्त्विक तथा ऐतिहासिक परिवेश अधिक मात्रा में झलकता हुआ प्रतीत होता है। वर्णन के माध्यम से ही लेखक ने विविध देशों अथवा स्थानों की संस्कृति तथा समाज के विभिन्न पक्षों का दिग्दर्शन कराया है। लेखक की वर्णनात्मक शैली में भी, भावात्मकता, रोचकता एवं सहज बोधगम्यता के गुण विद्यमान हैं। न्यूयार्क की व्यस्त सड़कों के दृश्य का वर्णन देखिए—

"चमकती चींटियों की-सी कतार ढलकती जाती है, कभी तेज, कभी धीरे। नाक से दुम लगी है, दुम से नाक—नाक-दुम, दुम-नाक और इनका अनवरत तारतम्य ! ये मोटरें हैं, अनेक प्रकार की मोटरें—कारें, बसें, ट्रकें—और इनकी अनेकानेक किस्में और बस देखता जा रहा हूँ, पिंस जार्ज होटल की बुलन्द इमारत की इस चौदहवीं मंजिकल की खिड़की से।"[47]

पीकिंग की दीपावली का एक दृश्य यहाँ दर्शनीय है, जिसका वर्णन लेखक ने बड़ी सजीवता और सहजता के साथ किया है—

"...नागरिक-नागरिकाएँ इस रात पेकिंग की सड़कों पर अबाध गति से उछलती नदी की भाँति बढ़ते जा रहे हैं।...मैं भी गया और मेरे साथ अनेक भारतीय गए। परन्तु जब उस विशाल स्वर्गीय शान्ति के द्वार के सामने मैदान में चौड़ी सड़क के पीछे खड़े हुए, तब उतरने को राह न मिली।"[48]

6. चित्रात्मक शैली

अपने यात्रा-वर्णनों में डॉ. उपाध्याय ने प्रकृति, चरित्र एवं नगर-ग्रामों के अनेक चित्र प्रस्तुत किए हैं। यद्यपि वर्णनात्मक शैली अथवा भावात्मक शैली में ये चित्र उकेरे गए हैं, किन्तु यहाँ हमारा आशय शब्द के माध्यम से है। इसे रेखाचित्र शैली भी कहा जा सकता है। लेखक के शब्दांकन अथवा शब्द-चित्र इतने ग्राह्य और सजीव बन पड़े हैं कि उसका यात्रा-साहित्य पाठक को अनायास आकर्षित करता है। हांगकांग के भिखमंगों का एक शब्द-चित्र देखिए—

"घिनौने लालची भिखमंगे, बूढ़े और बच्चे सहसा मुँह की चेष्टा बिगाड़ होठों को बिचका देते, गिड़गिड़ाकर हाथ फैला देते। एक लड़के ने जिसकी पीठ पर एक बच्चा बंधा हुआ था, हाथ फैला दाँत निपोरकर मुझसे कहा—"नो पापा, नो मम्मी (न बाप हैं न माँ) हांगकांग के भिखमंगे भयानक हैं आप झल्ला उठें, लाख झिड़कें, तड़पें पर वे पिण्ड न छोड़ेंगे।"[49]

7. नाटकीय शैली

अपने यात्रा-साहित्य में डॉ. उपाध्याय ने संवाद-योजना के माध्यम से नाटकीय शैली का प्रयोग किया है। विशेषकर किसी महान् व्यक्ति से हुए साक्षात्कार का विवरण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने नाटकीय शैली का प्रयोग सफलतापूर्वक किया है। उदाहरणार्थ रोम के महन्त पोप पायस से हुई लेखक की मुलाकात का कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत है—

"क्रिश्चियन हो !" पोप ने बात फिर शुरू की।

"बपतिस्मा से नहीं।"

"बपतिस्मा से नहीं ? और कैसे ?"

"मैं क्रिश्चियन नहीं हूँ।" मैंने धीरे से कहा।

"पवित्र बाइबिल पढ़ी है ?"

"जी, कई बार, प्रायः छः बार। एक कवर से दूसरे कवर तक।"

"होली बाइबिल का कौन-सा स्थल सबसे अधिक पसन्द आया ?"

"बाबुल की कैद। (बेबीलोनियन कैप्टिविटी)"

"बाबुल की कैद ! तुम्हारे गांधी को तो पर्वत का प्रवचन (सर्मन ऑन दि माउण्ट) पसन्द था।"[50]

8. कथात्मक शैली

डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में कथा-शैली के दो रूप देखे जा सकते हैं—एक तो पूरे यात्रा-साहित्य के तारतम्य के रूप में जहाँ लेखक केन्द्र में रहता है और सम्पूर्ण चित्र-चरित्र लेखक के इर्द-गिर्द घूमते चले जाते हैं। दूसरे लेखक स्वयं रोचक कथाओं का समावेश बीच-बीच में करता चलता है। प्रथम प्रकार की कथात्मकता तो स्वाभाविक रूप से यात्रा-साहित्य की रचना-प्रक्रिया में परमावश्यक है, लेकिन दूसरे प्रकार की कथाओं से लेखक का लोक-जीवन से सम्बन्ध, तत्सम्बन्धी ज्ञान, रुचि एवं उसके प्रस्तुतीकरण की पटुता का बोध होता है, साथ ही अतीत के महत्त्वपूर्ण पक्षों का उद्घाटन करने के लिए भी लेखक कथात्मक शैली का ही सहारा लेता है। 'घूमने का राज' यात्रा पुस्तक में एक शीर्षक ही लेखक की क थात्मक शैली का सबसे अच्छा प्रमाण है—"मैंने कहानी कही।" लेखक का अपना वक्तव्य यहाँ उल्लेखनीय है—

"मैं वैसे कहानी कहता नहीं, लिखता ज़रूर हूँ। कहानी मुझे खुले में महज़ तीन बार कहनी पड़ी है। एक बार न्यूयार्क के भारतीय कान्सुलेट में, दूसरी बार बेल्ग्रेड के सावा के तीर के बगीचे में और तीसरी बार अभी हाल मास्को में।"[51]

जब नाज़िम हिकमत के समझ मे न आने वाले पैंतालीस मिनट के फ्रेंच भाषण के बीच में लेखक को बोलने का अवसर नहीं दिया तब उसे अचाकन सियार और शेर की कथा याद आ गई, जिसमें सियार की माँ ने शेर से सियार की रक्षा के लिए एक ऐसा जन्तर बनवाकर दिया, जिसे देखते ही शेर मुस्करा उठे, लेकिन जब तमतमाया हुआ शेर सियार को मारने दौड़ा, तब उसकी माँ चिल्लाई—"बेटा जन्तर दिखा—जन्तर दिखा" तब घबड़ाए हुए बेटे ने जवाब दिया—"अरे यह जालिम शेर ज़रा दम लेने दे तब तो जन्तर का कागज़ दिखाऊँ। अरे, यह लमहे भर दम लेने दे तो कागज़ क्या पूरा दफ़्तर ही दिखा दूँ, पर दम तो लेने पाऊँ।"[52]

9. उद्धरण शैली

डॉ. कमल पुंजाजी ने उद्धरण शैली के ही एक रूप को प्रमाण-वहुला शैली कहा है।[53] उद्धरण शैली के माध्यम से लेखक अपने कथ्य को उद्धरणों द्वारा पुष्ट करता चलता है। डॉ. भगवतशरण उपाध्याय अपने यात्रा-साहित्य में कालिदास के उद्धरणों का प्रयोग अधिक मात्रा में करते हैं और भी अपने प्रिय कवियों तथा पठित दार्शनिक उद्धरणों का उल्लेख करने लगते हैं वे; यथा–

"इसी चीन के कान्सू प्रान्त के हूड़ रोम साम्राज्य को तोड़ भारत के गुप्त साम्राज्य की चूलों पर चोटें कर रहे थे; जब विलासप्रिय शक्रादित्य कुमार गुप्त का साधनशील तनय स्कन्द उन क्रूर कर्मा आक्रान्ताओं से टकरा रहा था–

"हूणोर्यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्यां धरा कम्पिता।..."

उसने उस संकट के काल में सामान्य सैनिक की भाँति रातें बिताई थीं–

"क्षितितल शयनीये येन नीता त्रियामा।"[54]

चीन के निरस्त्रीकरण समारोह के अवर्णनीय दृश्य के विषय में लेखक ने गोस्वामी तुलसीदास की पंक्ति का सहारा लिया है–

"उसे लिखने के लिए, जो देखा है, शारदा की वाणी, गणेश जी की कलम चाहिए। मुझे तो वही गुसाईं जी की वाणी याद आती है–

"गिरा अनयन नयन विनु वानी।"[55]

अपनी सहयात्री श्रीमती मीदिज़ को डॉ. उपाध्याय 'कुमार संभव' के अनेक शृंगारिक प्रसंग सुनाते हैं और फिर बिना अर्थ बताए महाकवि कालिदास के मेघदूत की पंक्तियाँ दोहराने लगते हैं–

"उत्संगे वा मलिन वसने
सौम्य निक्षिप्य वीणां
मद् गोत्रांकं विरचितपदं
गेयमुदगातु कामा।..."[56]

अनेक बार लेखक ने उद्धरण न देकर उद्धरण का भावार्थ ही अपने शब्दों में कह डाला है; यथा–

खाने, पीने और नाचने-गाने में लेखक का भारतीयपन जब आड़े आता है तब उसे उपनिषद् की वही बात याद आती है–

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य-
नश्नन्नयो अभिचाकशीति।"[57]

लेकिन इसका केवल भाव देकर लेखक अपना काम चला लेता है–

"...और वह चुपचाप देखता रहे, मोह में न पड़े–जीव और ब्रह्म का बहुत

पुराना फ़र्क सही कर दे—देखो एक पीपल का पेड़ है—उस पर दो पक्षी बैठे हैं, एक उस पीपल का गोदा फल खता है, दूसरा खाता नहीं, बस देखता है।''[58]

10. गवेषणात्मक शैली

इस शैली के द्वारा लेखक ने अपनी नयी खोजों, शोधों और जानकारियों को पाठकों के सामने रखा है। लेखक की निरन्तर अध्ययनशीलता और ज्ञान-पिपासा लेखक द्वारा प्रयुक्त गवेषणात्मक शैली में स्वतः स्फूर्त हो उठती है। यद्यपि लेखक ने इन यात्रा-साहित्य सम्बन्धी वर्णनों को गवेषणा-दृष्टि से मुक्त रखने का प्रयास किया है, किन्तु उसकी ज्ञानधरा में जहाँ-तहाँ शेधित-परिशोधित जानकारी स्वयमेव छलकने लगती है, उदाहरणार्थ—

''हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने चीन में अंग्रेज सैनिकों के जुल्म का आँखों देखा जो ब्यौरा दिया है वह रोंगटे खड़े कर देने वाला है, उनमें एक बयान तो यह है कि टामियों (अंग्रेजी सैनिकों) का जुल्म इतना भयानक हो उठा था कि उनकी शक्ल से चीनी औरतें घबराने लगीं और अनेक बार तो उनके हाथ में पड़ने से उन्होंने कुएँ में कूद जाना बेहतर समझा।''[59]

11. निबन्ध शैली

डॉ. रघुवंश यात्रा-साहित्य का प्रारम्भ निबन्ध शैली में ही मानते हैं।[60] प्रारम्भ में डॉ. उपाध्याय ने भी निबन्ध शैली में ही यात्रा-वर्णन लिखे। 'विश्व यात्री', 'वो दुनिया' और 'लाल चीन' यात्रा-पुस्तकों में इसी शैली का प्रयोग किया गया है। निबन्धात्मकता के कारण वैचारिकता तथा ऐतिहासिक, राजनीतिक विवरण अधिक प्रमुख होते चले गए हैं, यात्रा गौण; यद्यपि रेखा चित्रात्मकता, भावात्मकता एवं वर्णनों की कुशलता ने उन्हें शुद्ध-निबन्ध होने से बचा लिया है। शंघाई में वेश्यावृत्ति पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए डॉ. उपाध्याय लिखते हैं—

''नारी जो वस्तुतः नारी न थी, विलास का साधनमात्र थी। क्योंकि उस जीवन को जिसे वेश्या कहते हैं, नारी कहलाने का, जगदम्बा होने का हक नहीं।...संसार के पुरुष ने जहाँ अपने सुख और साधन बटोरे हैं, अपने धर्म-शास्त्र, शासन और कानून के ज़रिए, जहाँ अपने लिए अभिराम जगत् रचा है, नारी तक को अपने भोग का साधन बनाया है, इस घिनौनी नारी को भी अपने घिनौने व्यापार का साधन बना डाला है।''[61]

12. पत्र-शैली

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय की प्रसिद्ध यात्रा-पुस्तक 'कलकत्ता से पीकिंग' पत्र-शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। डॉ. कमल पुंजाणी ने इसे पत्रात्मक यात्रा-साहित्य

कहा है।[62] ये पत्र व्यक्तिगत सम्बन्धों का प्रदर्शन करते हुए प्रारम्भ किए जाते हैं, सम्बोधनादि करने के बाद लेखक यात्रा के वर्णन में अधिक रुचि लेता है। ऐसा नहीं है कि इन पत्रों में केवल पारिवारिक कुशल-क्षेम ही दी गई हो। अपने पत्रों के विषय में डॉ. उपाध्याय लिखते हैं–

"सन् 1952 ई. में मैं भारतीय प्रतिनिधि की हैसियत से शान्ति सम्मेलन में शामिल होने चीन गया था। वहाँ से मैंने अपने मित्रों, स्वजनों को कुछ पत्र लिखे थे। पत्र पाने वाले सभी प्रकार के व्यक्ति थे–अपने परिवार के लोग, मित्र, सम्बन्धी सरकारी अफसर, कवि, लेखक, उपन्यासकार। कुछ पत्र डाक से डाले गए कुछ लिखकर पास रख लिए गए। यह 'कलकत्ता से पेकिंग' उन्हीं पत्रों का संग्रह है, उन सभी पत्रों का जो उस काल लिखे गए।"[63]

इन पत्रों की एक विशेषता यह भी है कि जिस स्तर के व्यक्ति को पत्र लिखा गया है, उसकी विषयवस्तु तथा भाषा-शैली उसी स्तर की है। कविवर सुमित्रानन्दन पंत, नरेश मेहता पर्व डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन को लिखे पत्रों में वे प्रायः शान्ति सम्मेलन की साहित्यिक गतिविधियों पर ज्यादा ज़ोर देते हैं। बेटी चित्रा को लिखे पत्र में खिलौनों, भोजन तथा चीनी बच्चों की चर्चा करते हैं; यथा–

"वह (चीनी नारी) तुम लोगों सी नहीं जो छिपकली देखकर काँप जाय, झींगुर की आवाज़ सुनकर सहम जाय, कोई छुई-मुई नहीं जो स्पर्श मात्र से मुरझा जाय; वस्तुतः उन्मुक्त चीनी नारी जो बवण्डर चढ़ तूफान पर हकूमत करती है।"[64]

बीच-बीच में व्यक्तिगत सम्बन्धों की तरलता भर कर लेखक ने इन पत्रों को अधिक रोचक बना दिया है, यथा–

पुत्री चित्रा को पत्र में वे लिखते हैं–

"अब देखो बेटी ! खाना कायदे से खाना। ना-नू न करना जिससे स्वस्थ रह सको।"[65]

डॉ. शिमंगल सिंह 'सुमन' और उसके परिवार का स्मरण करते हुए वे लिखते हैं–

"सन्नाटा छाया था।...और तब मुझे तुम्हारी याद आई, बच्चों की और तुम्हारी भली बीवी शान्ति जी की।"[66]

वे अपनी छोटी बहिन कु. पद्मा उपाध्याय को अपने भोजनादि के बारे में निश्चिन्त रहने का निर्देश देते हैं–

"पद्मा

...तुम्हें मेरे भोजन के सम्बन्ध में चिन्ता होगी। पर ना, चिन्ता की कोई बात नहीं है। फलों की भरमार है–सेव, नाशपाती, नाख़, आड़ू, केले, अंगूर–दही जो तुम जानती हो मुझे बहुत रुचता है।"[67]

पत्र शैली में लेखक ने रोचकता, तरलता तथा यात्रा-वर्णनों की विविधता का परिचय दिया है।

13. डायरी शैली

अपनी यात्रा-साहित्य की प्रसिद्ध पुस्तक 'सागर की लहरों पर' में लेखक ने इस शैली का प्रयोग किया है। तिथि क्रम से डायरी लिखने के कारण यात्रा-वर्णन में क्रमबद्धता बनी रहती है। इस शैली में लेखक के वर्णन ऐसे लगते हैं मानो कोई फिल्म चल रही हो। लेखक दिन-वार का ब्यौरा लिखने के बाद नीचे तिथि लिख देता है और फिर दूसरी तिथि का विवरण देने लगता है; यथा–

(13-10-50)

आज चौदह है। उठा और मुँह हाथ धोकर पत्र लिखने बैठा।..."[68]

डायरी और पत्र-शैली में यात्रा-साहित्य लेखन की क्रमबद्धता एक-सी बनी रही है। अन्तर केवल इतना है कि डायरी में केवल तिथि का उल्लेख करके वर्णन लिखे गए हैं और पत्र-शैली में तिथि तथा सम्बन्धित व्यक्ति के लिए सम्बोधन और बाद में लेखक ने अपना नाम लिखा है। केवल 'फार्म' का ही अन्तर है, विषय-वस्तु के प्रस्तुतीकरण में कोई विशेष अन्तर नहीं दिखाई देता।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि लेखक ने अपने यात्रा-साहित्य में सभी प्रचलित शैलियों का प्रयोग किया है। लेखक की भावात्मकता, विचारों की स्पष्टता, भाषा की चित्रोपमता एवं वर्णनों की मार्मिकता सर्वत्र देखी जा सकती है। डॉ. उपाध्याय एक सजग शैलीकार तथा भाषा के सहज पारखी तथा प्रयोगधर्मी लेखक के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

सन्दर्भ

1. हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, (चतुर्थ भाग); डॉ. हरवंशलाल शर्मा; पृ. 545
2. नवभारत टाइम्स; 15 अगस्त, 1982
3. हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास; उमेश शास्त्री; पृ. 122
4. साहित्य तथा उसकी विविध विधाओं का अध्ययन; डॉ. तारिणीचरणदास चिदानन्द; पृ. 219
5. शैली विज्ञान; डॉ. नगेन्द्र; पृ. 65
6. भाषा विज्ञान की भूमिका; आचार्य देवेन्द्र नाथ शर्मा; पृ. 225
7. शैली विज्ञान; डॉ. नगेन्द्र; पृ. 64
8. कलकत्ता से पीकिंग; डॉ. भगवतशरण उपाध्याय; पृ. 19
9. भारतीय संस्कृति के स्रोत; डॉ. भगवतशरण उपाध्याय; पृ. 114
10. घूमने का राज; डॉ. भगवतशरण उपाध्याय; पृ. 192
11. लाल चीन; पृ. 16
12. सागर की लहरों पर; पृ. 15
13. घूमने का राज; पृ. 194

14. तदेव; पृ. 195
15. सागर की लहरों पर; पृ. 240
16. तदेव; पृ. 42-43
17. घूमने का राज; पृ. 295-96
18. सागर की लहरों पर; पृ. 129
19. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 130
20. घूमने का राज; पृ. 135
21. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 26
22. वही; पृ. 32
23. वही; पृ. 56
24. वही; पृ. 44
25. सागर की लहरों पर; पृ. 25
26. शैली विज्ञान; डॉ. नगेन्द्र; पृ. 73
27. घूमने का राज; पृ. 214-15
28. वही; पृ. 215
29. वही; पृ. 217
30. सागर की लहरों पर; पृ. 42
31. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 129
32. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का पत्र डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के नाम दिनांक 4 अक्तूबर, 1945
33. हिन्दी जीवनी-साहित्य : सिद्धान्त और अध्ययन; पृ. 267
34. एन इण्ट्रोडक्शन टु द स्टडी आव लिट्रेचर; पृ. 27
35. हिन्दी साहित्य कोश; प्र. सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा; पृ. 609
36. घूमने का राज; पृ. 143
37. सागर की लहरों पर; पृ. 29
38. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 3-4
39. घूमने का राज; पृ. 224
40. वही; पृ. 224
41. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 58
42. लाल चीन; पृ. 192-93
43. घूमने का राज; पृ. 2 01
44. सागर की लहरों पर; पृ. 15
45. वही; पृ. 12
46. घूमने का राज; पृ. 297
47. वही; पृ. 9
48. लाल चीन; पृ. 17
49. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 11
50. वो दुनिया; पृ. 204
51. घूमने का राज; पृ. 204
52. वही; पृ. 217
53. हिन्दी का पत्र-साहित्य; डॉ. कमल पुंजाजी; पृ. 337

54. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 124
55. वही; पृ. 118
56. घूमने का राज; पृ. 283
57. तृतीय मुण्डकोपनिषद् 1/1
58. घूमने का राज; पृ. 178
59. लाल चीन; पृ. 2
60. हिन्दी साहित्य कोश, पृ. 609
61. लाल चीन; पृ. 118
62. हिन्दी का पत्र-साहित्य; पृ. 88
63. कलकत्ता से पीकिंग; (दो शब्द से)
64. कलकत्ता से पीकिंग; पृ. 83
65. वही; पृ. 86
66. वही; पृ. 40
67. वही; पृ. 49
68. सागर की लहरों पर; पृ. 129

7
मूल्यांकन

हिन्दी यात्रा-साहित्य का उद्‌भव और विकास हिन्दी गद्य के समानान्तर ही हुआ है। प्रारम्भ में हिन्दी यात्रा-साहित्य को निबन्ध का ही एक भेद माना गया था, किन्तु उसकी शैलियों का धीरे-धीरे विकास होता चला गया और उसका अपना एक स्वतन्त्र स्वरूप निर्धारित हुआ। आज भी आत्मकथा, संस्मरण, रेखामित्र, रिपोर्ताज़, पत्र तथा डायरी-साहित्य से यात्रा-साहित्य को भिन्न करके देखना कठिन है, लेकिन थोड़ा विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि इन विधाओं से यात्रा-साहित्य की प्रवृत्ति और उसकी रचना की प्रक्रिया तत्त्वतः भिन्न है। आत्म-कथा और यात्रा-साहित्य में सबसे बड़ा अन्तर लेखक के व्यक्तित्व के प्रतिफलन के आधार पर किया जा सकता है। यदि लेखक का व्यक्तित्व अधिक मुखर होगा और वह परिवेश से हटकर जब स्वयं को महत्त्वपूर्ण बना लेगा, तब आत्मकथा की रचना होगी। यात्रा-साहित्यकार के व्यक्तित्व का सन्तुलित प्रतिबिम्बन ही यात्रा-साहित्य में अपेक्षित है। यात्रा-साहित्य आत्म-कथात्मक विधा होते हुए भी आत्मकथा नहीं है। संस्मरण से यात्रा-साहित्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है, किन्तु यात्रा-साहित्य संस्मरणात्मक विधा होते हुए भी संस्मरण से भिन्न है। यात्रा-साहित्यकार किसी एक व्यक्ति पर नहीं टिका रहता, उसकी दृष्टि गत्यात्मक होती है; उसके यात्रा-वर्णन में व्यक्ति, वस्तु, स्थान, प्रकृति, इतिहास, भूगोल, राजनीति, दर्शन सभी कुछ अभिव्यक्ति पाता है। संस्मरण इतने बड़े परिवेश को एक साथ नहीं समेट सकता। रेखाचित्र, रिपोर्ताज़, पत्र तथा डायरी, शैली के रूप में यात्रा-साहित्य में प्रयुक्त होते हैं। वस्तुतः यात्रा-साहित्य इन सभी विधाओं की विशेषताओं को अपने भीतर समेटकर एक विस्तृत परिप्रेक्ष्य में अभिव्यक्त होता है।

हिन्दी यात्रा-साहित्य का प्रारम्भ भी काव्य, चम्पू एवं ब्रजभाषा गद्य से ही हुआ, किन्तु उसकी रचना निबन्धात्मक ही रही। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जैसे अन्य गद्य-विधाओं को स्वरूप प्रदान किए, वैसे ही यात्रा-साहित्य को भी स्वरूप और रोचकता प्रदान की। भारतेन्दु के वर्णन काव्यात्मकता लिए हुए हैं। भारतेन्दु युगीन अन्य यात्रा-साहित्यकारों ने भी इस विधा की समृद्धि में योगदान दिया।

द्विवेदी युग तक आते-आते यात्रा-साहित्य-विधा पर्याप्त विस्तार ले चुकी थी। इस युग में बाबू देवी प्रसाद खत्री, ठाकुर गदाधर सिंह, गोपाल राम गहमरी के अतिरिक्त स्वामी सत्यदेव परिव्राजक का सर्वाधिक योगदान यात्रा-साहित्य को रहा है। स्वामी जी ने देश-विदेश की यात्राएँ करके अपनी अद्‌भुत घुमक्कड़ी वृत्ति, प्रकृति-प्रेम एवं राष्ट्रीय-भावना आदि विशिष्टताओं का परिचय यात्रा-साहित्य में दिया है।

उत्तर द्विवेदी युग में वायुयान के विकास के साथ-साथ हिन्दी यात्रा-साहित्य को उड़ंचु आकाशीय परिप्रेक्ष्य मिला। समस्त विश्व जैसे यात्रियों ने अपनी मुट्ठी में बन्द कर लिया था। उत्तर द्विवेदी युग के प्रमुख यात्रा-साहित्यकारों में केदार रूप राय, बेणीशुक्ल, महता जेमिनी, स्वामी मंगलानन्द पुरी, कृपानाथ मिश्र, प्रो. मनोरंजन, सेठ गोविन्द दास, डॉ. सत्यनारायण, गोपाल नेवटिया, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, स्वामी प्रणवानन्द आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस युग में सर्वाधिक विस्तृत फलक पर स्वामी सत्यदेव परिव्राजक एवं महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने यात्रा-साहित्य की रचना की। दोनों साहित्यकारों का जीवन घूमते ही बीता। दोनों को ही घुमक्कड़ी ने ही साहित्यकार बनाया। दोनों ही साहित्यकारों के प्रभाव-स्वरूप परवर्ती काल में यात्रा-साहित्यकारों की एक लम्बी परम्परा का प्रादुर्भाव हुआ।

स्वातंत्र्योत्तर युग में भारतवर्ष का परिवेश बदला। स्वतंत्र-भारत के यात्रियों की मानसिकता, उद्देश्य तथा वर्णन-कौशल में भी अत्यधिक परिवर्तन हुआ। अब यात्रा-साहित्य अधिक कलात्मक, साहित्यिक एवं रोचक हो गया। स्वामी सत्यदेव परिव्राजक एवं महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने स्वतंत्रता के बाद भी अपनी रचनाओं से पाठकों एवं नये युग के साहित्यकारों को अनुप्राणित किया। स्वामीजी की 'यात्री-मित्र' एवं राहुलजी की 'घुमक्कड़-शास्त्र' घुमक्कड़ी की प्राणवत्ता को उद्‌घाटित करने एवं युवकों को उद्‌बोधित करने वाली कृतियाँ हैं।

स्वातंत्र्योत्तर युग में डॉ. भगवतशरण उपाध्याय, काका कालेकर, कामताप्रसाद सिंह 'काम', सेठ गोविन्द दास, रामवृक्ष बेनीपुरी, यशपाल, अज्ञेय, मोहन राकेश, श्रीनिधि सिद्धान्तालंकार, डॉ. रामधारी सिंह दिनकर, राम कुमार, यशपाल जैन, अक्षयकुमार जैन, पं. गोपालप्रसाद व्यास, प्रभाकर द्विवेदी, डॉ. रामकुमार वर्मा, निर्मल वर्मा, डॉ. रघुवंश, पद्‌मा सुधि, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, डॉ. नगेन्द्र, राजेन्द्र अवस्थी, शंकर दयाल सिंह आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस युग के यात्रा-साहित्य में न केवल परिवेश की विविधता मुखरित हुई, अपितु भाषा-सौष्ठव और शैली-शिल्प की दृष्टि से यात्रा-साहित्य की रचना में उत्कर्ष हुआ है। वस्तुतः स्वातंत्र्योत्तर युगीन यात्रा-साहित्य अपेक्षया अधिक साहित्यिक तथा कथात्मक है।

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय अपने युग के अग्रतम विद्वान्, विश्व-विख्यात पुराविद्, इतिहासज्ञ, कला-साहित्य के मर्मज्ञ समीक्षक एवं रचनाकार, विश्व यात्री एवं

यात्रा-साहित्यकार के रूप में विख्यात हुए हैं। डॉ. उपाध्याय ने हिन्दी-अंग्रेजी दोनों भाषाओं में विपुल साहित्य-रचना की है। उन्होंने हिन्दी में, निबन्ध, नाटक, उपन्यास, कहानी, समीक्षा, यात्रा-साहित्य, रिपोर्ताज़, बाल-साहित्य एवं पुरातत्त्व, इतिहास, कला, साहित्य, संस्कृति सम्बन्धी शताधिक ग्रन्थों का प्रणयन किया; भारतीय व्यक्ति कोश, हिन्दी विश्वकोश आदि महत्त्वपूर्ण कोशों का सम्पादन किया तथा संस्कृत के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का अनुवाद भी किया। अंग्रेजी साहित्य में डॉ. उपाध्याय के ग्रन्थ 'वीमने इन ऋग्वेद', 'इण्डिया इन कालिदास', 'दी एन्शेण्ट वर्ल्ड' तथा शेड्स एण्ड शेडोज़' प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। डॉ. उपाध्याय के सम्पूर्ण लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनकी दृष्टि मूलतः सामाजिक ही रही है, ऋग्वेद में नारी की स्थिति का निरूपण हो या कालिदास कालीन भारत की सामाजिक परिस्थितियों की समीक्षा अथवा इतिहास-पुरातत्त्व सम्बन्धी साहित्य का लेखन हो, उनका सामाजिक बोध सर्वत्र जाग्रत है। समाज-जीवन को मूलाधार बनाकर ही डॉ. उपाध्याय ने कला, साहित्य एवं संस्कृति की समीक्षा की है। पुराकाल से अधावधि मानवाधिकारों का शोषण और सत्तालोलुपता डॉ. उपाध्याय की पैनी दृष्टि का लक्ष्य रही है। वे साम्राज्यवाद, अधिनायकतन्त्र और मानवीय शोषण का निरन्तर विरोध करते रहे। डॉ. उपाध्याय के लेखन की दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता है—उनका इतिहास-बोध और इतिहास-बोध में काल की सीमाओं का अतिक्रमण। तात्पर्य यह कि उनके साहित्य में अतीत और वर्तमान एक ही रेखा पर घटित होते हुए वे प्रतीत होते हैं। पुरातात्त्विक परिवेश में रचा हुआ उनका साहित्य आज भी ऐसा लगता है मानो कल की बीती घटना की कथा हो।

डॉ. उपाध्याय का अध्ययन अत्यन्त विस्तृत एवं शोध-दृष्टि प्रखर थी। केवल भारतीय ही नहीं अपितु विश्व भर के साहित्य, कला, संस्कृति, जीवन-दर्शन, इतिहास एवं पुरातत्त्व का जैसा मार्मिक और सजीव चित्रण डॉ. उपाध्याय के साहित्य में मिलता है, वैसा अन्यंत्र दुर्लभ है। उनके 'ग्रन्थ' 'विश्व साहित्य की रूप-रेखा' और 'समीक्षा के सन्दर्भ' उनके मौलिक चिन्तन तथा बहुआयामी ज्ञान के प्रमाण हैं।

संस्कृति के समग्र चिन्तन पर डॉ. उपाध्याय का बल था। वे संस्कृति को गतिशील और मानव-जीवन के समग्र-बोध के रूप में ग्रहण करते रहे।

पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों की तुलना करते समय डॉ. उपाध्याय का भारतीयपन ऊपर रहता था। भारत का अतीत उन्हें बराबर प्रेरणा देता था। वे मानते थे भारतीय जीवन-मूल्य, पाश्चात्य जीवन-मूल्यों की अपेक्षा अधिक स्थायी और महत्त्वपूर्ण है।

हिन्दी यात्रा-साहित्य में डॉ. उपाध्याय का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान यह है कि उन्होंने अपने व्यक्तित्व की छाप अपने यात्रा-साहित्य में यत्र-तत्र छोड़ी है। उनका चिन्तन, दर्शन, सौन्दर्य-बोध, देश-प्रेम, अध्ययनशीलता तथा मानववाद के

प्रति समर्पण भाव उनके यात्रा-साहित्य में सर्वत्र आच्छादित है।

डॉ. उपाध्याय का सौन्दर्य-बोध बहुत कुछ वस्तुनिष्ठ है। मांसल-सौन्दर्य के प्रति उनकी सपाट दृष्टि किसी सीमा तक सामन्तवादी प्रवृत्ति की परिचायिका लगती है, लेकिन उसका मूल कारण उनका पुरातात्त्विक ज्ञान है। कलाकृतियों के मासल-सौन्दर्य को देखते-देखते लेखक की दृष्टि विकार रहित ही रही है, ऐसा उसने अनेक बार स्वीकार किया है।

डॉ. उपाध्याय घोषित रूप से नास्तिक थे, किन्तु गणेश की कलम, सरस्वती की जिह्वा की पुनः-पुनः चर्चा करके लेखक मानो अपने वैष्णवी संस्करों का ही परिचय देता है। भारतीय साहित्य, दर्शन, चिन्तन, कला, संस्कृति पर कुछ भी लिखते समय इसीलिए लेखक अतिरिक्त भावुक नहीं दिखाई देता। अपने यात्रा-साहित्य में भी डॉ. उपाध्याय का यह निर्लिप्ति-भाव स्पष्ट है। ईसाई पोप से बात करते समय इसीलिए लेखक उसकी धार्मिक कट्टरता का विरोध करता है और इसीलिए हिन्दू-धर्म की विद्रूपताओं पर प्रहार कर पाता है।

डॉ. उपाध्याय ने अपने यात्रा-साहित्य में स्वतन्त्र भारत की छवि को विदेशों में उभारा है, विशेषकर भारत की गुटनिरपेक्ष नीति एवं विश्व-मानवता का उन्होंने एक प्रकार से प्रचार ही किया है। पश्चिम के विशिष्ट वैज्ञानिकों, विद्वानों, साहित्यकारों तथा धार्मिकों से रोचक साक्षात्कार करके लेखक ने उसकी ज्ञानात्मक भूमिका का निर्वाह किया है।

द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता द्विवेदीयुगीन यात्रा-साहित्यकारों में भी पाई जाती है। और जैसे छायावादी काव्य एक कलात्मक आन्दोलन लेकर सामने आया, ठीक वैसे ही स्वामी सत्यदेव परिव्राजक तथा राहुल सांकृत्यायन के यात्रा-साहित्य की वर्णनात्मकता के बाद डॉ. उपाध्याय ने यात्रा-साहित्य में कलात्मकता तथा प्रकृति-चित्रण में सौन्दर्य-बोध की दृष्टि से प्रथम बार सर्जनात्मक-धर्म का परिचय दिया। यद्यपि वर्णनात्मकता का सर्वथा अभाव डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में भी नहीं है, किन्तु भावात्मक एवं शैल्पिक दृष्टि से पूर्वापेक्षा उनका यात्रा-साहित्य अधिक कलात्मक है। कलात्मक यात्रा-साहित्य का प्रारम्भ ही डॉ. उपाध्याय से हुआ यदि ऐसा कहा जाय, तो अत्युक्ति नहीं होगी।

डॉ. उपाध्याय की अपनी सामाजिक-राजनीतिक प्रतिबद्धता उनके यात्रा-साहित्य में सर्वत्र स्पष्ट परिलक्षित होती है। राहुल सांकृत्यायन के अतिरिक्त अन्य किसी यात्रा-साहित्यकार में यह दृष्टि इतनी स्पष्ट नहीं है। राहुल जी की अपेक्षा डॉ. उपाध्याय का यात्रा-साहित्य अधिक संवेदनशील, कलात्मक एवं भावात्मक है। डॉ. उपाध्याय की भाषा राहुल जी की अपेक्षा अधिक चित्रात्मक, भाव-व्यंजक एवं रोचक है।

राजनीतिक और सामाजिक दृष्टि से डॉ. उपाध्याय के बाद यशपाल,

अमृतराय, मोहन राकेश और सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की दृष्टि भी स्पष्ट है।

प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से डॉ. उपाध्याय का यात्रा-साहित्य उनके पूर्ववर्ती और समकालीन यात्रा-साहित्य की अपेक्षा अधिक कलात्मक है। प्रकृति-चित्रण की वही कलात्मकता हमें अज्ञेय, मोहन राकेश, डॉ. रघुवंश, निर्मल वर्मा, रामकुमार, श्रीनिधि सिद्धान्तालंकार, पद्मा सुधि, डॉ. नगेन्द्र तथा डॉ. रामकुमार वर्मा के यात्रा-साहित्य में मिलती है।

हमें यह मानना चाहिए कि डॉ. उपाध्याय ने यात्रा-साहित्य की जिन दो प्रमुख धाराओं को अनुप्राणित किया उनमें से एक थी—सामाजिक-राजनैतिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से सम्पन्न यात्रा-साहित्य की परम्परा और दूसरी साहित्यिक-कलात्मक यात्रा-साहित्य की परम्परा जिसमें प्रकृति-चित्रण तथा लेखक की संवेदक प्रतिक्रिया अधिक महत्त्वपूर्ण है अथवा यूँ कहें कि जिनमें लेखकीय व्यक्तित्व के प्रतिफलन को अधिक महत्त्व प्रदान किया जाता है। डॉ. उपाध्याय के यात्रा-साहित्य का शैल्पिक-सौन्दर्य भी बहुत महत्त्वपूर्ण है, जो परवर्ती यात्रा-साहित्य में विकसित होता गया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि डॉ. उपाध्याय ने यात्रा-साहित्य के इतिहास में एक नए युग का प्रारम्भ किया था, जो अधिक साहित्यिकता एवं कलात्मकता के गुणों से युक्त था और जिसने परवर्ती यात्रा-साहित्य के लिए नयी सम्भावनाओं का विकास किया।

❑❑

परिशिष्ट

डॉ. मुरारीलाल शर्मा का रचना-संसार

काव्य-ग्रन्थ

जानें कब खिले पलाश; पल्लवी प्रकाशन, बरेली; 1994

शोध-पत्र : सहलेखन

1. हिन्दी यात्रा-साहित्य; हिन्दी गद्य की विधाएँ; सं. डॉ. जगदीशदत्त शर्मा एवं डॉ. श्यामकिशोर शर्मा; अखिल भारतीय विक्रम परिषद्; मुज़फ्फर नगर; 1980
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति : एक विहंगावलोकन; स्व. धर्मदत्त वैद्य स्मृति-ग्रन्थ; सं. डॉ. राम सुमिरन लाल; स्व. धर्मदत्त वैद्य स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशन-समिति, धनवंतरि मार्ग, बरेली; 1991
3. आंध्रप्रदेश की प्रसिद्ध नृत्य-शैली कुचिपुड़ी; आकाशवाणी वार्ताएँ विविध प्रसंग, खण्ड-2; सं. डॉ. शम्भुशरण शुक्ल 'अभीत' अल्पना प्रकाशन, बरेली; 1994
4. शिक्षा का राष्ट्रीय दायित्व; आकाशवाणी वार्ताएँ, भाग-3, सं. डॉ. सरोज मार्कण्डेय एवं डॉ. कौशलनन्दन गोस्वामी, लोकवाणी संस्थान, दिल्ली; 1996
5. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी : एक सर्वेक्षण; कथाकार स्व. चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' स्मृति-ग्रन्थ; सं. डॉ. शम्भुशरण शुक्ल 'अभीत' सांस्कृतिक सर्वेक्षण समिति; पीलीभीत; 1997
6. मानस में निर्गुण-सगुण; तुलसी पंचशती : स्मृति पारिजात; सं. डॉ. भगवानशरण भारद्वाज; योगक्षेम प्रकाशन; बरेली; 2000

शोध-पत्र (विविध पत्रिकाओं में प्रकाशित)

1. हिन्दी यात्रा-साहित्य : स्वरूप-विवेचन; संगम; जून, 1980
2. पं. माधवप्रसाद मिश्र का यात्रा-साहित्य; सरस्वती; दिसम्बर, 1980
3. कामताप्रसाद सिंह का यात्रा-साहित्य; वीणा; जून, 1980
4. गोपाल प्रसाद व्यास के यात्रा-साहित्य में अरब-जीवन; सरस्वती; जुलाई, 1980
5. डॉ. नगेन्द्र का यात्रा-साहित्य; वीणा; मार्च, 1980
6. आंध्रप्रदेश की नृत्य-शैली कुचिपुड़ी; संगम; मार्च, 1984

7. गीत और नवगीत; संगम; सितम्बर, 1984
8. मोहन राकेश ने यात्रा-साहित्य में चरित्रांकन; वीणा; 1985
9. हिन्दी नवगीत; उत्तरा; गुजराज विद्यापीठ; मार्च, 1986
10. नवगीत में ग्रामीण-जीवन; संगम; 1986
11. मानस में निर्गुण-सगुण; मानस भारती, जनवरी 1988
12. यायावर डॉ. भगवतशरण उपाध्याय; संगम; 1988
13. डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में सौन्दर्य चित्रण; संगम; 1989
14. भारतेन्दु का यात्रा-साहित्य; संगम; 1989
15. यात्रा-साहित्य और अन्य आधुनिक गद्य-विधाएँ; संगम; 1990
16. स्वामी सत्यदेव परिव्राजक का यात्रा-साहित्य; संगम; 1991
17. यात्रा-साहित्य की विशेषताएँ; वीणा; 1991
18. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी यात्रा-साहित्य, भाग-1; संगम; जून, 1991
19. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी यात्रा-साहित्य, भाग-2; संगम; सितम्बर, 1991
20. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी यात्रा-साहित्य, भाग-3; संगम; दिसम्बर, 1991
21. डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के यात्रा-साहित्य में झलकता उनका व्यक्तित्व; भाषा; मई-जून, 1992
22. महापंडित राहुल सांकृत्यायन और उनका यात्रा-साहित्य; संगम; 1992

अन्य प्रमुख प्रकाशित लेख

1. कुचिपुड़ी एक गाँव का नाम है; अमर उजाला; 1983
2. भारतेन्दु के यात्रा-साहित्य में हरिद्वार; अमर उजाला; अक्तूबर, 1987
3. बच्चों को प्यार दीजिए; समाज कल्याण; अगस्त, 1988
4. यादों के घेरे; कहानी; संगम; 1988
5. हिन्दी आत्मकथा साहित्य; संगम; 1987
6. पत्रों के दर्पण में बच्चन; संगम; अगस्त, 1989
7. राष्ट्रीय एकता का मुख्य माध्यम हिन्दी-भाषा; संगम; 1989
8. सरल हिन्दी बनाम कठिन हिन्दी; संगम; अप्रैल, 1990
9. हिन्दी में वर्तनी-दोष; संगम; 1990
10. होमवर्क से बचाइए बच्चों को; अमर उजाला; जनवरी, 1992
11. हरिद्वार : एक सांस्कृतिक परिचय, भारतीय त्वचा विशेषज्ञों के ग्यारहवें अधिवेशन की स्मारिका; नवम्बर, 1992
12. काव्य-रचना की प्रेरणा; संगम; जनवरी, 1994
13. हिन्दी कविता बनाम कवि-सम्मेलन; संगम; अप्रैल, 1994
14. वादों और विवादों से घिरी कविता का भविष्य; संगम; जुलाई, 1994

15. संचार माध्यम और कविता; संगम; अक्तूबर, 1994
16. कविता में छांदसिकता का प्रश्न; संगम; जनवरी, 1995
17. सुदूर शिक्षा : सम्भावनाएँ और उपयोगिता; संगम; अप्रैल, 1995
18. हिन्दी में नाम संक्षिप्त करने की समस्या; भास्कर; केन्द्रीय विद्यालय संगठन की राजभाषा-पत्रिका; 1997
19. स्मृतियों के गवाक्ष; नीरज के साथ, संगम; 1998

यात्रा-साहित्य

1. कलकत्ता कभी नहीं सोता; अनामिका; 1978
2. जहाजों की नगरी में; अमर उजाला; 9 अगस्त, 1981
3. जुड़वाँ शहर में अमर उजाला; 1981
4. पूरब पुरी बिराजै; अमर उजाला; 6 जून, 1982
5. कलातीर्थ कोणार्क; अमर उजाला; 13 जून, 1982
6. लाल पन्नों का स्मारक; अमर उजाला; 20 जून, 1982
7. अरुकू घाटी में; अमर उजाला; मई, 1983
8. हरिद्वार : मिथक और यथार्थ; अमर उजाला; 7 मई, 1984
9. गोदावरी तीरे; अमर उजाला; 19 मई, 1985
10. गढ़वाल का गौरव-तीर्थ-नीलकण्ठ महादेव; विश्वात्मा; नवम्बर, 1986
11. सीमान्त शिखर की ओर; संगम; जुलाई, 1995
12. आदिम गंधों के बीच; संगम; जनवरी, 1996
13. काली, गोरी और धौली, संगम, 2000

प्रमुख कविताएँ

काव्य मंजरी, केन्द्रीय विद्यालय संगठन द्वारा प्रतिवर्ष शिक्षक-दिवस पर प्रकाशित काव्य-पुस्तक में–

1. गंगोलीहाट, 1997;
2. आभास, 1998
3. नवगीत; मत भूलो ममता के छन्द; 1999

नवगीत अर्द्धशती समारोह वाराणसी 13-14 सितम्बर. 1986 में प्रकाशित स्मारिका में–

गीत; शिवालिक के शिखर

वीणा में

1. हाइकू, 2. सागर-तट : एक शाम (एक), 3. सागर-तट : एक शाम (दो),

4. सागर-तट : एक शाम (तीन), 5. नये स्वर, 6. आदिम-सी ज़िन्दगी, 7. माँ के लिए, 8. तलाश में, 9. ढलता सूरज, 10. भोर हुई, 11. हाइकू, 12. क्या हुए वे दिन, 13. पतझर के वृक्ष, 14. हवाई उड़ान, 15. अपनापन खो जाने दो, 16. बाल-कविताएँ, 17. साँझ की यादें, 18. कौन नहीं होता है कवि ?

समाज कल्याण में

1. मत भूलो ममता के छन्द, 2. नदी हो गयी उदास, 3. चिड़िया, 4. वायुयान, 5. फिर आए याद वही, 6. तब उसने जाना कि..., 7. याद तुम्हारी आएगी

भाषा में

दो कविताएँ (बँगला अनुवाद सहित)

आजकल में

1. शिरीष के फूल, 2. आत्म-कथ्य

मधुमती में

अपनापन खो जाने दो

संगम में

पिथौरागढ़ : पाँच काव्य विम्ब एवं अन्य लगभग तीस कविताएँ।

अंग्रेजी भाषा में रचनाएँ

1. Institutional Self Evaluation (with special reference to value Education) (The paper was presented in the Principal's Conference of Kendriya Vidyalaya Sangathan Dehradun Region held at Kendriya Vidyalaya ONGC Dehradun on 13-14 December, 1995
2. Progress in Academic Performance; (The paper was presented in the Principal's Conference of Kendriya Vidyalaya Sangathan Dehradun Region held at Kendriya Vidyalaya No. 1, BHEL Hardwar on 11-12 July, 1996.)
3. A strategy to make the Class-Room Teaching more lively: (with special reference to primary classes.)
(The paper was presented in the Principal's Conference of Kendriya Vidyalaya held at Kendriya Vidyalaya IFFCOAONLA, Bareilly on 17-18 July, 1998.)

अनुशंसाएँ

1. डॉ. रामकुमार वर्मा, 2. सोनल मान सिंह

(पद्मभूषण) दूरभाष : 52816

डॉ. रामकुमार वर्मा, एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्. साकेत

साहित्य वाचस्पति 4, प्रयागस्ट्रीट,

पूर्व प्रोफेसर— इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, मास्को अन्तर्राष्ट्रीय संस्थान, सीलोन यूनिवर्सिटी, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग — इलाहाबाद-2

ता० 18-6-1980

पूर्व अध्यक्ष—शासी मंडल, उ. प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

अध्यक्ष—हिन्दुस्तानी एकेडेमी उ. प्र.

प्रिय मुरारीलाल शर्मा जी,

अभी सरस्वती के जून मास का अंक प्राप्त हुआ। उसमें आपने मेरी पुस्तक 'स्मृति के अंकुर' पर अपने विचार प्रकट किये हैं। अनेक धन्यवाद। रूस से लौटते ही सन् १९५९ में पुस्तक लिखी और प्रकाशित हुई। आप ही पहले साहित्यकार हैं जिन्होंने उसे पढ़कर अपने लेख का विषय बनाया।

मैंने १२० के लगभग एकांकी लिखे हैं। कितना अध्ययन, कितना अनुशीलन और कितनी प्रयोग-धर्मिता ! किसी ने उस ओर ध्यान दिया ? स्व-केन्द्रित साहित्यकार अपनी रचना के अतिरिक्त किसको कितना पढ़ते हैं !

मैं तो अपने रास्ते चल रहा हूँ, कोई देखे या न देखे ! पुनः धन्यवाद।

भवदीय

रामकुमार वर्मा

Padma Bhushan
Smt. Sonal Mansing

C-304, Defence Colony
Nes Delhi-110 024
Phone : 4623350

17-5-94

Dr. Murarilal Sharma
Principal
Kendriya Vidalaya No. 1
H.E.C. Ranchi-834 004
BIHAR.

Dear Dr. Sharma,

Thank you very much for your kind letter dated 11th May, 1994 enclosing your book of poems which includes a poem on me. I have enjoyed going through them. I wish you many more years of happy poetry-writing.

With best wishes,

Yours sincerely,
SONAL MANSINGH



लेखक-परिचय

जन्म–2 मार्च, 1953 को बरेली ज़िले के रम्पुरा तुलसीराम ग्राम में।

शिक्षा–प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के विद्यालय में टाट-पट्टी पर बैठकर और नदी की रेत में खेलकर सम्पन्न हुई। बरेली कॉलेज, बरेली (आगरा विश्वविद्यालय) से 1974 में एम. ए. हिन्दी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। 1988 में पी-एच. डी. की उपाधि; रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली से डॉ. रामस्वरूप आर्य (बिजनौर) के निर्देशन में प्राप्त की। तमिल भाषा में डिप्लोमा और शिक्षा-शास्त्र में स्नातक।

व्यवसाय–1975 से विभिन्न कॉलेजों में हिन्दी-शिक्षण। 1979 से 1993 तक केन्द्रीय विद्यालयों में हिन्दी-शिक्षण के उपरान्त 1993 से केन्द्रीय विद्यालय संगठन में प्राचार्य के रूप में सेवा-रत।

देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं, रेडियो और दूरदर्शन पर शताधिक रचनाओं का प्रकाशन-प्रसारण।

संप्रति–केन्द्रीय विद्यालय, भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून में प्राचार्य।